विप्लव पुस्तक माला—२७

२०३
कहानी

देव पुरस्कार प्राप्त

चित्र का शीर्षक

(छोटी और बड़ी चौदह समस्यामूलक कहानियां)

६०८६
४.३.६८

यशपाल

(चतुर्थ संस्करण)

प्रकाशक

विप्लव कार्यालय, २१ शिवाजी मार्ग,

लखनऊ

अगस्त १९६२ तीन रुपया

प्रकाशक —
विप्लव कार्यालय
ल ख न ऊ

पुस्तक के प्रकाशन और अनुवाद के सर्वाधिकार लेखक द्वारा स्वरक्षित हैं।

मुद्रक :—
साथी प्रेस
ल ख न ऊ

६०८६
५·३·६८

समर्पण

कहानी को जीवन की समस्याओं के सुलझाव का साधन बनाने वाले आदिम कलाकारों को मैं अपनी यह नयी छोटी-बड़ी तेरह कहानियां समर्पित करता हूं।

यशपाल

प्रसंग-क्रम

१—चित्र का शीर्षक

२—हाय राम !……ये बच्चे !!

३—आदमी या पैसा ?

४—प्रधान मन्त्री से भेंट

५—मार का मोल

६—शहनशाह का न्याय

७—स्थायी नशा

८—एक सिगरेट

९—फूल की चोरी

१०—अनुभव की पुस्तक

११—पांव तले की डाल

१२—साहू और चोर

१३—इसी सुराज के लिये ?

भूमिका

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा द्वारा प्रकाशित एक कहानी-संग्रह की भूमिका मे कहानी के प्रयोजन के सम्बन्ध मे विवेचना की गई है। इस प्रसंग में गुरुदेव रवीन्द्र के एक उद्धरण के आधार पर मन्तव्य प्रकट किया गया है कि कहानी का उद्देश्य केवल कहानी है, कहानी लेखक कहानी लिखना या सुनाना चाहता है इसीलिये कहानी लिखता है। कहानी लिखने या सुनने से या कहानी सुनने या पढ़ने से जो सन्तोष होता है, वही कहानी का आद्योपान्त उद्देश्य और लक्ष्य है, अन्य कुछ नहीं।

बेटी को सुना कर बहू को सीख देने के ढंग से कहानी के सम्बन्ध मे गुरुदेव के यह विचार निश्चय ही हिन्दी जगत के उन नौसिखिये प्रगतिवादी लेखकों को सुनाये गये हैं जो कहानी या साहित्य को सामाजिक उद्बोधन और समाज की आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक समस्याओ के हल का साधन बनाना चाहते हैं। गुरुदेव के समान मानवता से आत्मीयता स्थापित कर सकने वाले कलाकार की गवाही से कहानी का प्रयोजन कला के लिये कला या कहानी से रस लेना ही बता देने के पश्चात, नौसिखिये प्रगतिवादी लेखक की बात का शायद कुछ मूल्य रह ही नही जाता परन्तु यह बात भी भुला देने योग्य नही कि गुरुदेव के वचन सभी लोगो के मुंह मे जा कर एक सा ही अर्थ नही रख सकते। उदाहरणत: गीता का उपदेश देते समय कृष्ण के यह शब्द 'सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरण व्रज' (धर्म-अधर्म और कर्तव्य-अकर्तव्य की उलझन मे न पड़ कर तू बस मेरी बात मान)। सभी के मुख से न तो उतनी विश्वासोत्पादक हो सकती है, न प्रभावशाली।

अपने-अपने मानसिक विकास के क्षेत्र और सांस्कृतिक स्तर के अनुसार व्यक्ति के स्वान्तः सुख और संतोष का रूप बदलता रहता है। एक सुसंस्कृत व्यक्ति आत्मतोष की भावना से ही जन-कल्याण के लिये प्राण दे देता है और दूसरा पड़ोसी के घर सेंध लगाकर संतोष पाना चाहता है। क्या ऐसे दोनो व्यक्तियो के आत्मतोष की भावना पर एक समान भरोसा किया जा सकता है ? ऐसे ही कहानी लिखने से भी सभी लेखक एक ही प्रकार के आत्मतोष

[illegible]

[illegible] मन जाता है। पाठक के कौतूहल, उत्सुकता, सहानुभूति और विरोध का आधार कहानी द्वारा कहानी की समस्या में आत्मीयता अनुभव करना ही है। कहानीकार को कहानी सुनाने की इच्छा या लोभ पाठकों या श्रोताओं से सामाजिक सम्बन्ध के आधार पर आवश्यकतानुकूल कल्पित चित्रों द्वारा अनुभूति के और विचारों के आदान-प्रदान का अवसर पाना ही है। इस सामाजिक निश्चय में कथाकार और श्रोता दोनों को ही अनुभूतिगम्य आत्मीयता होना आवश्यक है। यदि कहानी में रस मिलने और कहानी कहने की इच्छा के सम्बन्ध में उपरोक्त मन्तव्य को अंशतः भी स्वीकार किया जा सकता है तो कहानी मूलतः एक सामाजिक वस्तु हो जाती है और उसे केवल व्यक्तिगत [illegible] का साधन कह कर छोड़ देना, कहानी के मूल तत्व से इन्कार कर [illegible] होगा।

कहानी को एक सामाजिक सूत्र मान कर हम कहानी के प्रयोजन और कथाकार के सामाजिक उत्तरदायित्व की उपेक्षा किस प्रकार कर सकते हैं? इस सामाजिक सूत्र का एक छोर कथाकार है, दूसरा श्रोता। इन के अस्तित्व

को भुलाकर कहानी को केवल कथाकार के आत्मसंतोष का ही साधन कैसे मान लिया जा सकता है ? हां, यदि कहानी के रूप में सामाजिक समस्या के विवेचन और चिन्ता को हम बोझ के रूप में अनुभव नहीं करते तो उसे हम कहानी कला की सफलता अवश्य समझ सकते हैं। कहानी को निश्चय ही अरुचिकर और बोझल नहीं होना चाहिये परन्तु कहानी का उद्देश्य स्वयं कहानी ही बता देना, कहानी को निष्प्रयोजन और निरुद्देश्य बना देना होगा। हमें मान लेना होगा कि हम कहानी से श्रोता या पाठक पर कोई भी प्रभाव पड़ने की आशा नहीं करते।

यदि कहानी की सफलता की कसौटी पाठक या श्रोता पर पड़ने वाले प्रभाव को माना जाय तो कहानी से पड़ने वाले प्रभाव के प्रति सतर्क रहना भी सामाजिक कर्तव्य हो जाता है। कहानी निष्फल और प्रभावशून्य न कभी हुई है, न हो ही सकती है। कहानी से पड़ने वाले प्रभाव ही उसका प्रयोजन और उद्देश्य हैं। हम इस प्रयोजन या उद्देश्य के प्रति सचेत हों या न हों।

कहानी द्वारा परम्परागत मान्यताओं के समर्थन को कला का स्वाभावतः गुण बना देना और कला के माध्यम से नवीन विचारों का परिचय देने के प्रयत्न को कला का दुष्प्रयोग बता देना, कला को एक विशेष विचार-धारा की चेरी बनाये रखने का ही प्रयत्न है। जनवाद के इस युग में कला पर एकाधिकार की यह प्रवृत्ति कैसे सहन की जा सकती है ?

जून, १९५२

यशपाल

या स्वान्तः सुख की चेष्टा नहीं करते। उदाहरण के लिये गुरुदेव रवीन्द्र की कविताओं से एक पंजाबी लोकगीत 'तूम्बा वजदाई ना' की तुलना करना पर्याप्त होगा। निश्चय ही 'तूम्बा वजदाई ना' के गायक ने अपने गीत में एक स्वान्तः सुख प्राप्त किया होगा जैसे कि गुरुदेव अपनी कविताओं या गीतों में करते थे परन्तु 'तूम्बा वजदाई ना' की स्वान्तः सुख की अनुभूति समाज द्वारा स्वीकृत नैतिकता के लिये इतनी असह्य थी कि सरकारी आज्ञा से उसका सार्वजनिक रूप से गाया जाना निषिद्ध ठहराना आवश्यक समझा गया और गुरुदेव के गीत को राष्ट्रीय गीत का स्थान देने से जनता को संतोष हुआ।

महापुरुषों के वचनों के लिये प्रायः ही टीका और भाष्य की आवश्यकता होती है इसलिये गुरुदेव की बात को समझने का प्रयत्न करना धृष्टता न समझी जानी चाहिये। हमारे सामने दो मौलिक प्रश्न हैं। एक—कहानी से रस क्यों मिलता है? दूसरा—कहानीकार को कहानी सुनाने की इच्छा ही क्यों होती है? शायद यह उत्तर विवादास्पद न समझा जायगा कि कहानी से रस मिलने का कारण श्रोता या पाठक का कहानी के पात्र के जीवन और व्यवहार के प्रति कौतूहल और उत्सुकता है। पाठक या तो कहानी के पात्र के प्रति सहानुभूति से या पात्र के अनुचित कार्य के प्रति विरोध अनुभव कर कहानी में रस पाता है। पाठक के कौतूहल, उत्सुकता, सहानुभूति और विरोध का आधार कहानी द्वारा कहानी की समस्या से आत्मीयता अनुभव करना ही है। कहानीकार की कहानी सुनाने की इच्छा का स्रोत पाठकों या श्रोताओं से सामाजिक सम्बन्ध के आधार पर आवश्यकतानुकूल काल्पनिक चित्रों द्वारा अनुभूति के और विचारों के आदान-प्रदान का अवसर पाना ही है। इस सामाजिक चित्र से कथाकार और श्रोता दोनों की ही अनुभूतिगम्य आत्मीयता होना आवश्यक है। यदि कहानी से रस मिलने और कहानी कहने की इच्छा के सम्बन्ध में उपरोक्त मन्तव्य को अंशतः भी स्वीकार किया जा सकता है तो कहानी मूलतः एक सामाजिक वस्तु हो जाती है और उसे केवल व्यक्तिगत संतोष का साधन कह कर छोड़ देना, कहानी के मूल तत्व से इन्कार कर देना होगा।

कहानी को एक सामाजिक सूत्र मान कर हम कहानी के प्रयोजन और कथाकार के सामाजिक उत्तरदायित्व की उपेक्षा किस प्रकार कर सकते हैं? इस सामाजिक सूत्र का एक छोर कथाकार है, दूसरा श्रोता। इन के अस्तित्व

चित्र का शीर्षक

जयराज जाना-माना चित्रकार था। वह उस वर्ष अपने चित्रों को प्रकृति और जीवन के यथार्थ से सजीव बना सकने के लिये, अप्रैल के आरम्भ में ही रानीखेत जा बैठा था। उन महीनों पहाड़ों में वातावरण खूब साफ और आकाश नीला रहता है। रानीखेत से 'त्रिशूल', 'पनचोली' और 'चौखम्भा' की बरफानी चोटियां, नीले आकाश के नीचे माणिक्य के उज्ज्वल स्तूपों जैसी जान पड़ती हैं। आकाश की गहरी नीलिमा से कल्पना होती कि गहरा नीला समुद्र ऊपर चढ़ कर छत की तरह स्थिर हो गया हो और उसका श्वेत फेन, समुद्र के गर्भ से मोतियों और मणियों को समेट कर ढेर का ढेर नीचे पहाड़ों पर आ गिरा हो।

जयराज ने इन दृश्यों के कुछ चित्र बनाये परन्तु मन न भरा। मनुष्य के सम्पर्क से हीन यह चित्र बनाकर उसे ऐसा ही अनुभव हो रहा था जैसे निर्जन बियाबान में गाये राग का चित्र बना दिया हो। यह चित्र उसे मनुष्य की चाह और अनुभव के स्पन्दन से शून्य जान पड़ते थे। उसने कुछ चित्र, पहाड़ों पर पसलियों की तरह फैले हुये खेतों में श्रम करते पहाड़ी किसान स्त्री-पुरुषों के बनाये। उसे इन चित्रों से भी सन्तोष न हुआ। कला की इस असफलता से अपने हृदय में एक हाय, हाय का सा शोर अनुभव हो रहा था। वह अपने स्वप्न और चाह की बात प्रकट नहीं कर पा रहा था।

जयराज अपने मन की तड़प को प्रकट कर सकने के लिये व्याकुल था। वह मुट्ठी पर ठोडी टिकाये बरामदे में बैठा था। उसकी दृष्टि दूर-दूर तक फैली हरी घाटियों पर तैर रही थी। घाटियों के उतारों-चढ़ावों पर सुनहरी धूप खेल रही थी। गहराइयों में चांदी की रेखा जैसी नदियां कुण्डलियां खोल रही थीं। दूध के फेन जैसी चोटियां खड़ी थीं। कोई लक्ष्य न पाकर उसकी दृष्टि असन्तुष्ट

की, आंखों में बुद्धि की चमक। जयराज ने ब्रश को तिपाई पर एक ओर रख दिया और फिर सामने घाटी के विस्तार पर निरुद्देश्य नज़र किये सोचने लगा—क्या उपाय है?

जयराज की निरुद्देश्य दृष्टि तो घाटी के विस्तार पर तैर रही थी परन्तु कल्पना में अनुभव कर रहा था कि उसके समीप ही दूसरी आराम कुर्सी पर नीना बैठी है। वह भी दूर घाटी में कुछ देख रही है या किसी पुस्तक के पन्नों या अखबार में दृष्टि गड़ाये है। समीप बैठी युवती नारी की कल्पना जयराज को दूध के फेन के समान श्वेत, स्फटिक के समान उज्ज्वल पहाड़ की बरफानी चोटी से कहीं अधिक स्पन्दन उत्पन्न करने वाली जान पड़ी। युवती के केशों और शरीर से आती अस्फुट सी सुवास, वायु के झोंकों के साथ घाटियों से आती केवड़े और सिरीस के फूलों की भीनी गन्ध से अधिक सन्तोष दे रही थी। वह अपनी कल्पना में देखने लगा—नीना उसकी आंखों के सामने घाटी की एक पगडंडी पर चढ़ती जा रही है। कड़े पत्थरों और कंकड़ों के ऊपर नीना की गुलाबी एड़ियां, सैन्डल में सम्भली हुई हैं। वह चढ़ाई में साड़ी को हाथ से सम्भाले है। उस की पिंडलियां केले के भीतर के डण्ठल के रंग की हैं, चढ़ाई के श्रम के कारण नीना की सांस चढ़ गई है और प्रत्येक सांस के साथ उसका सीना उठ आने के कारण, कमल की प्रस्फुटनोन्मुख कली की तरह अपने आवरण को फाड़ देना चाहता है। कल्पना करने लगा—वह कैनवेस के सामने खड़ा चित्र बना रहा है। नीना एक कमरे से निकली है। आहट से उसके काम में विघ्न न डालने के लिये पंजों के बल उसके पीछे से होती हुई दूसरे कमरे में चली जा रही है। नीना किसी काम से नौकर को पुकार रही है। उस आवाज से उसके हृदय का कोना-कोना सरसा सूनापन सन्तोष से भर गया है ···।

जयराज तुरन्त कागज और कलम ले उत्तर लिखने बैठा परन्तु ठिठक कर सोचने लगा—वह क्या चाहता है?········ फिर भी पत्नी नीना से वह क्या चाहेगा?······ तटस्थता से तर्क कर उसने उत्तर दिया—कुछ भी नहीं। जैसे सूर्य के प्रकाश में हम सूर्य की किरणों को पकड़ लेने की आवश्यकता नहीं समझते, उन किरणों से स्वयं ही हमारी आवश्यकता पूरी हो जाती है; वैसे ही वह अपने जीवन में अनुभव होने वाले सूनसान अंधेरे से नारी की उपस्थिति का प्रकाश चाहता है।

जयराज ने संक्षिप्त-सा उत्तर लिखा—'······भीड़-भाड़ से बचने के लिये

अलग पूरा ही बंगला लिया है। बहुत सी जगह खाली पड़ी है। सबलेट का कोई सवाल नहीं। पुराना नौकर पास है। यदि नीता जी उस पर देख-रेख करेंगी तो मेरा ही लाभ होगा। जब सुविधा हो आकर उन्हें छोड़ जाओ। फोन से समय की सूचना देना। मोटर स्टैण्ड पर मिल जाऊंगा……।"

अपनी आंखों के सामने और उसके समीप एक तरुण सुन्दरी के होने की कल्पना से जयराज का मन उन्माद से भर गया। नीता की अस्पष्ट-सी याद को जयराज ने [illegible] के सौन्दर्य के आदर्शों की कल्पनाओं से पूरा कर लिया। [illegible] अपने कमरे में, नाश्ते की पार्टी पर, सड़क पर अपने साथ [illegible]। जयराज ने उसे भिन्न-भिन्न रंगों की साड़ियों में, [illegible] पोशाक में, मारवाड़ी अंगिया-लहँगे में, [illegible] में, [illegible] के पेड़ के तले और देवदारों की शाखाओं [illegible] देख लिया। [illegible] सामने आ जाने की [illegible] जैसे ही जैसे अंधेरे में परेशान [illegible]।

[illegible] नारीत्व को नीता [illegible]

[illegible]

"मैं जयराज हूं।"

महिला ने मुस्कराने का यत्न किया—"मैं नीता हूं।"

महिला की वह मुस्कान ऐसी थी जैसे पीड़ा की दवा कर कर्त्तव्य पूरा किया गया हो। महिला के साधारणत दुबले हाथ-पावों पर लगभग एक शरीर का बोझ पेट पर बंध जाने के कारण उसे मोटर से उतरने में भी कष्ट हो रहा था। बिखरे जाते अपने शरीर को सम्भालने में उसे वैसी ही असुविधा हो रही थी जैसे सफर मे बिस्तर के बन्द टूट जाने पर उसे सम्भालना कठिन हो जाता है। महिला लगड़ाती हुई कुछ ही कदम चल पायी कि जयराम ने एक डाडी (डोली) को पुकार उसे चार आदमियो के कधे पर लदवा दिया। सौजन्य के नाते उसे डाडी के साथ चलना चाहिये था परन्तु उस शिथिल और विरूप आकृति के समीप रहने मे जयराज को उबकाई और ग्लानि अनुभव हो रही थी।

नीता बगले पर पहुच कर एक अलग कमरे मे पलग पर लेट गई। जयराज के कानों मे उस कमरे से निरन्तर 'आह! ऊंह!' की दबी कराहट पहुंच रही थी। उसने दोनों कानों मे उंगलिया दबा कर कराहट सुनने से बचना चाहा परन्तु उसे शरीर के रोम-रोम से वह कराहट सुनाई दे रही थी। वह नीता की विरूप आकृति, रोग और बोझ से शिथिल, लगडा-लगड़ा कर चलते शरीर को अपनी स्मृति के पट से पोंछ डालना चाहता था परन्तु वह बरबस आ कर उसके सामने खड़ा हो जाता। नीता जयराज को उस मकान के पूरे वातावरण में समा गई अनुभव हो रही थी। जयराज का मन चाह रहा था—बंगले से कहीं दूर भाग जाये।

दूसरे दिन सुबह सूर्य की प्रथम किरणें बरामदे मे आ रही थी। सुबह की हवा में कुछ खुनकी थी। जयराज नीता के कमरे से दूर, बरामदे में आराम-कुर्सी पर बैठ गया। नीता भी लगातार लेटने से ऊब कर कुछ ताजी हवा पाने के लिये अपने शरीर को सम्भाले, लगड़ाती-लंगड़ाती बरामदे में दूसरी कुर्सी पर आ बैठी। उसने कराहट को गले मे दबा, जयराज को नमस्कार कर हाल-चाल पूछ कर कहा—"मुझे तो शायद सफर की थकावट या नयी जगह के कारण रात नींद नहीं आ सकी ·····।"

जयराज के लिये वहां बैठे रहना असम्भव हो गया। वह उठ खड़ा हुआ और कुछ देर में लौटने की बात कह बंगले से निकल गया। परेशानी में वह इस सड़क से उस सड़क पर मीलों घूमता इस संकट से मुक्ति का उपाय सोचता

[illegible]

[illegible] है ।
[illegible]
[illegible]
[illegible] है । [illegible]
[illegible] है । [illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible] है । [illegible]
[illegible] दिखाने के लिए [illegible] और
[illegible] ।"

बनारस में [illegible]
[illegible]

देना चाहा परन्तु मस्तिष्क मे भरे हुये नारी की विरूपता के यथार्थ ने उसका पीछा न छोड़ा। वह बनारस लौट आया और अपने ऊपर किये गये अत्याचार का बदला लेने के लिये रग और कूची लेकर कैनवेस के सामने जा खड़ा हुआ।

जयराज ने एक चित्र बनाया, पलंग पर लेटी हुई नीता का। उसका पेट फूला हुआ था, चेहरे पर रोग का पीलापन, पीडा से फैली हुई आंखें, कराहट में खुल कर मुड़े हुये होंठ, हाथ-पाव पीडा से ऐंठे हुये।

जयराज यह चित्र पूरा कर ही रहा था कि उसे सोम का पत्र मिला। सोम ने अपने पुत्र के नामकरण की तारीख बता कर बहुत ही प्रबल अनुरोध किया था कि उस अवसर पर उसे अवश्य ही इलाहाबाद आना पडेगा। जयराज ने झुंझलाहट मे पत्र को मोड़ कर फेंक दिया, फिर औचित्य के विचार से एक पोस्टकार्ड लिख डाला—धन्यवाद, शुभ कामना और बधाई। आता तो जरूर परन्तु इस समय स्वय मेरी तबियत ठीक नही। शिशु को आशीर्वाद।

सोम और नीता को अपने सम्मानित और कृपालु मित्र का पोस्ट कार्ड शनिवार को मिला। रविवार वे दोनों सुबह की गाड़ी से बनारस जयराज के मकान पर जा पहुंचे। नौकर उन्हे सीधे जयराज के चित्र बनाने के कमरे मे ही ले गया। वह नया चित्र सबसे आगे अभी चित्र बनाने की टिकटिकी पर ही चढा हुआ था। सोम और नीता की आखें उस चित्र पर पड़ी और वहीं जम गई।

जयराज अपराध की लज्जा से गडा जा रहा था। बहुत देर तक उसे अपने अतिथियों की ओर देखने का साहस ही न हुआ और जब देखा तो नीता गोद मे किलकते बच्चे को एक हाथ से कठिनता से सम्भाले, दूसरे हाथ से साड़ी का आचल होठो पर रखे अपनी मुस्कराहट छिपाने की चेष्टा कर रही थी। उस की आखें गर्व और हंसी से तारों की तरह चमक रही थी। लज्जा और पुलक की मिलावट से उसका चेहरा सिंदूरी हो रहा था।

जयराज के सामने खड़ी नीता, रानीखेत मे नीता को देखने से पहले और उसके सम्बन्ध मे बनाई कल्पनाओ से कही अधिक सुन्दर थी। जयराज के मन को एक धक्का लगा—ओह, धोखा ! और उसका मन फिर धोखे की ग्लानि से भर गया।

जयराज ने उस चित्र को नष्ट कर देने के लिये समीप पडी छुरी हाथ मे उठा ली। उसी समय नीता का पुलक भरा शब्द सुनाई दिया—"इस चित्र का

शीर्षक आप क्या रखेंगे ?"

जयराज का हाथ रुक गया। वह नीता के चेहरे पर गर्व और अभिमान के भाव को देखता स्तब्ध खड़ा था।

कलाकार को अपने इस बहुत ही उत्कृष्ट चित्र के लिये कोई शीर्पक न खोज सकते देख नीता ने अपने बालक को अभिमान से आगे बढ़ा, मुस्कराकर सुझाया—"इस चित्र का शीर्पक रखिये 'सृजन की पीड़ा' !"

—:○○○○○:—

हाय राम !......ये बच्चे !!!

जोशी साहब और मीर साहब पड़ोसी हैं। पड़ोस दोनों के लिये अच्छा है। दोनों बड़े आदमी हैं। यों तो ब्राह्मणों में जोशी और मुसलमानों में सैय्यद कुल के बड़प्पन और पवित्रता से ही बड़े होते हैं परन्तु वकील जोशी साहब और डाक्टर मीर साहब उस बड़प्पन पर निर्भर नहीं करते। जोशी साहब जिले के सफल वकील हैं और मीर साहब जिले के सिविल सर्जन। दोनों ही उदार विचार हैं। उन की साम्प्रदायिकता केवल घर के भीतर रसोई-चौके तक ही सीमित है। विचारों से दोनों आधुनिक हैं। अपने बच्चों के लिये निम्न-श्रेणी के परिवारों के गन्दे बच्चों की सोहबत-संगत पसन्द नहीं करते।

शहर में लड़के-लड़कियों के लिये और फिर हिन्दू-मुसलिम लड़के-लड़कियों के लिये अलग-अलग स्कूल मौजूद हैं परन्तु बड़े लोगों के बच्चे सफाई, और सभ्यता के ख्याल से प्रायः मिशन स्कूल में ही पढ़ाये जाते हैं। इस देश को सभ्य बनाने वाले अंग्रेज देश से जाते समय, सभ्यता और सफाई की विरासत अपने सहधर्मियों को ही सौंप गये हैं। वकील साहब ऊंचे कुल के ब्राह्मण हैं और डाक्टर मीर, हजरत मुहम्मद के रक्त का दावा करते हैं परन्तु दोनों को ही सभ्यता और सफाई का अंग्रेजी कायदा पसन्द है। दोनों ने बच्चों को सभ्य और सफाई पसन्द बनाने के लिये मिशन स्कूल में दाखिल करवा दिया है। वकील साहब की दोनों लड़कियां नीलू और ऊषा, डाक्टर खान का पांच बरस का लड़का बन्ने और सात बरस की लड़की नस्सू (नसीम) एक ही जगह पढ़ते हैं।

नीलू और नस्सू समवयस्क, सहपाठी और पड़ोसी होने के कारण सहेलियां भी बन गई हैं। दोनों वही खेल खेलती हैं जो हिन्दुस्तान भर की इस आयु की लड़कियां खेला करती हैं; गुड़िया का खेल। दोनों ने लकड़ी के खाली बक्सों में अपनी गुड़ियों के मकान सजाये हैं। वे अपनी गुड़ियों की शादियां

[illegible]

[illegible] सबकर और ओर [illegible] नीलू और ऊषा को देख [illegible] है। [illegible] दोनों [illegible] कभी-कभी [illegible] हैं।

परन्तु [illegible] नीलू और ऊषा [illegible] भी कुछ देने को मन हो आता है परन्तु [illegible] रसोई में पकी चीज ब्राह्मण के बच्चों [illegible] हाथ [illegible] जाता है। [illegible] अपने हाथ से बनायी चीज और भगवान का [illegible] की बनाई चीज, जिस में हिन्दू-मुसलमान की छूत का परहेज नहीं होता, या कोई फल-फूल या बाजार का बना बिस्कुट-टाफी जोशी साहब के बच्चों को दे देती है। ऐसी कठिनाई जोशी साहब के यहां नहीं होती क्योंकि ब्राह्मण अपने आपको संसार के सब मनुष्यों से पवित्र समझते हैं। ब्राह्मण के विचार में उस के हाथ की छुई हुई चीज से किसी को परहेज नहीं हो सकता परन्तु एक झिझक यहां भी हो ही जाती है।

झिझक ऐसी कि जब नीलू और ऊषा की मम्मी या दादी अपने बच्चों को खाने के लिये कोई चीज कांसे की कटोरी या तश्तरी में देती हैं तो वही चीज बन्ने या नस्रू को कांसे की कटोरी या तश्तरी सामने रहने पर भी चीनी या कांच का बरतन ढूंढ कर देनी पड़ती है। उनके विश्वास में कांसे का बरतन पवित्र और चीनी या कांच का बरतन अपवित्र होता है। यों भी कहा जा सकता है कि कांसे-पीतल का बर्तन हिन्दू होता है जो दूसरों की छूत से अपवित्र हो जाता है। कांच और चीनी के बर्तन अपवित्र ही होते हैं। नीलू की मम्मी

और दादी स्वयं सदा काँसे-पीतल के बरतनों का ही व्यवहार करती हैं, चीनी या शीशे के बरतनों का कभी नहीं। मुसलमान चाहे कितना ही सुथरा या बड़ा आदमी हो, उसके बच्चे चाहे कितने ही प्यारे लगें, उन्हें अपने खाने के बरतनों में कैसे खिलाया जा सकता है ? मुसलमान या अछूत को धातु के बरतन में खिला देने पर बरतन को शुद्ध करने के लिये आग में रखना जरूरी हो जाता है। नीलू की मम्मी और दादी स्वयं कुछ खाने-पीने से पहले बन्ने और नस्सू को बाहर खेलने के लिये बहला देती हैं। खाने-पीने की चीज पर नीच जात या मुसलमान की दृष्टि पड़ जाने से भी खाद्य पदार्थ ऊंची जात के हिन्दुओं के लिये अपवित्र हो जाता है।

नीलू और ऊषा को दादी और मां ने कई बार समझाया है—पागलो, रसोई खेलने की जगह नहीं। ·· रसोई और पूजा की कोठरी में बन्ने और नस्सू को कभी नहीं लाना। इतना भी नहीं समझतीं तुम कि मुसल्लों को रसोई और पूजा की कोठरी में नहीं लाते ?

बच्चे काफी तेजी से भांपने और समझने लगते हैं। बन्ने अभी पाँच ही वर्ष का है परन्तु नस्सू कोई नयी बात देखती है तो अपनी पलकें फैला कर स्थिर आँखों से सोचने लगती है। नीलू अपनी गुड़िया की शादी अपने गुड्डे से कई बार कर चुकी थी। उस दिन वह अपनी गुड़िया की शादी नस्सू के गुड्डे के साथ करने के लिये नस्सू को न्योत कर साथ लिवा लाई थी। दोनों समधिनें बनने वाली थीं। यों तो गुड़िया की शादी और दावत का प्रबन्ध बरामदे में ही था परन्तु किसी चीज की जरूरत पड़ जाने पर दोनों साथ-साथ दौड़ती रसोई में जा पहुंची।

नीलू की माँ और दादी उस समय शाम की चाय जोशी साहब के लिये उनके कमरे में भेज कर स्वयं काँसे के गिलासों में पी रही थीं। दोनों लड़कियों को रसोई में घुसे आते देख उन्होंने अपनी चाय नस्सू की नजर से छिपा कर बड़ी कठिनाई से उन्हें दरवाजे पर ही रोका। आश्वासन दे दिया कि दो मिनिट में स्वयं ही सब कुछ बरामदे में पहुंचा देंगी।

ऐसा पहले भी कई बार हो चुका था लेकिन उस दिन नस्सू को कुछ अधिक समझ आ गया। बरामदे की ओर लौटते हुये उसने नीलू के गले में बांह डाल कर पूछा—"एक बात सुन, तेरी दादी और मम्मी मुझे रसोई में नहीं आने देतीं, मेरे सामने खाती-पीती भी नहीं !·········क्या बात है ?"

नीलू ने भवें चढ़ा कर सोचा और नस्सू की कमर में बांह डाल, उसे अपने साथ लिपटाते हुये समझाया—"मैं बताऊं, तू मुसल्ली है न !"

नस्सू ने सोच कर पूछा—"अच्छा, तू मुसल्ली नहीं है ?"

"नहीं, मैं जोशी हूं ।" नीलू ने समझाया, "तेरी अम्मीजान सलवार पहनती हैं, वह मुसल्ली हैं । मेरी अम्मी धोती पहनती हैं, वह जोशी हैं ।"

"तू कहाँ धोती पहनती है ? तू फ्राक पहनती है । मैं भी फ्राक पहनती हूं ।" नस्सू ने फिर आग्रह किया ।

"मैं बताऊं नस्सू, अभी हम लोग बच्चे हैं ।" नीलू सोच कर बोली, "जब हम बड़ी हो जायेंगी तो मैं मम्मी की तरह धोती पहनूंगी, मैं जोशी हो जाऊंगी । तू अम्मीजान की तरह सलवार और गरारा पहनेगी, तू मुसल्ली हो जायेगी । फिर मैं तेरे हाथ का नहीं खाऊंगी । अभी तो छोटी हूं, छोटों को समझ नहीं होती है न ! बड़ी हो जाऊंगी तो तेरे हाथ का थोड़े ही खाऊंगी !"

"तू मेरे हाथ का नहीं खायेगी तो मैं भी तेरे हाथ का नहीं खाऊंगी !" नस्सू ने समर्थन किया, "जब हम बड़ी हो जायेंगी तो हिन्दू और मुसलमान हो जायेंगी । हिन्दू-मुसलमानों में खूब लड़ाई होगी । हम लोग भी खूब लड़ेंगी, है न ?"

"हां, तो फिर तेरे गुड्डे और मेरी गुड़िया की शादी कैसे होगी ?...... हम खेलेंगी कैसे ?" नीलू ने चिन्ता से पूछा ।

"शादी नहीं होगी तो आओ गुड्डे-गुड़िया की लड़ाई का खेल खेलें !" नस्सू ने सुझाया, "तू मेरे गुड्डे को छुरी मार, मैं तेरी गुड़िया को छुरी मारूंगी और फिर गुड्डे-गुड़िया के घर में आग लगा देंगे !......है न ?"

नीलू के सहमत हो जाने पर नस्सू ने सुझाया—"तो जा, तू रसोई से तरकारी काटने की छुरी ले आ । हिन्दू-मुसलमान की लड़ाई का खेल खेलें ।"

नीलू ने जाकर दादी से बड़ी छुरी मांगी । उन्होंने विस्मय से पूछा—"हैं, छुरी !.........छुरी का क्या करोगी ?.........ना, हाथ कट जायेगा !"

"नहीं नहीं ?......नहीं कटेगा ! हम हिन्दू-मुसलमान की लड़ाई का खेल खेलेंगे !......दो न जल्दी !" नीलू ने मचल कर आग्रह किया ।

दादी की आंखें भय और विस्मय से फैल गईं । दोनों हाथों में सिर थाम उन्होंने नीलू की मां को पुकारा—"हाय राम !.........देख तो ! !.........ये बच्चे ! ! !"

आदमी या पैसा ?

कालिज के सहपाठी हम सब लोग अब बिखर चुके हैं। हम लोगों के जीवन में अब कोई सादृश्य और समता भी नहीं रह गयी। कभी आपस में साक्षात्कार हो जाने पर शिष्टाचार के नाते मुस्कराहट होठों पर छा जाती है। अधिकांश में हम लोग अपनी-अपनी कृच्छ्रता में या कहिये निर्वाह न हो सकने लायक आमदनी में सन्तोष और सफलता अनुभव कर लेने की आध्यात्मिक प्रक्रिया का अभ्यास करते रहते हैं।

अपने सहपाठियों में से प्रायः नरदेव और राम बाबू की ही याद आती है। नरदेव आई० सी० एस० में चला गया था। वह अब सेक्रेटेरियट में खूब ऊँचे पद पर है। जब कोई पूछ बैठता है कि हमने एम० ए० कब पास किया था तो मुह से उत्तर निकल जाता है—'हमने और नरदेव ने प्रेजीडेन्सी कालिज से एक साथ ही एम० ए० किया था। अरे जानते नहीं, वही नरदेव जो स्वायत्त-शासन का सेक्रेटरी है, दो हजार मासिक ले रहा है!'

इस दृष्टि से हमारे दूसरे साथी राम बाबू को भी खूब सफल समझा जाना चाहिये परन्तु उनके प्रति समाज में और अपने मित्रों में भी वैसा आदर नहीं जैसा नरदेव के लिए है। तनखा के नाम पर राम बाबू भी डेढ़ हजार ले रहे है परन्तु न उनके अपने चेहरे पर और न समाज के हृदय पर ही उनका वैसा रोब है। हम लोग प्रायः अपने राम बाबू की चर्चा सहानुभूति से कर संतोष पा लेते हैं कि यह भी कोई जिन्दगी है ?···इसे बरबादी ही समझिये !

कालिज में राम प्रतिभावान और बेपरवाह भी था। कालिज के बाद पत्र-कार बन गया। खबरें इकट्ठी करने या गढ़ने और उन्हें रंग देने की अद्वितीय प्रतिभा के कारण आज पत्रकारों में उसकी तो नहीं; अलबत्ता उसकी कलम की धाक है। शरीर से रूखा-सूखा, पोशाक की ओर से बेपरवाह, आंखों पर

मोटे-मोटे शीशों का चश्मा चढ़ाये, मेज पर बैठ कुछ घन्टे कलम घिसकर वह ऐसी बात पैदा कर सकता है कि कभी-कभी सरकार भी परेशान हो जाती है और समाज के बड़े-बड़े स्तम्भ पूंजीपति भी तिलमिला उठते हैं। यह सब कर सकने पर भी राम बाबू की अवस्था दयनीय ही है।

राम बाबू एक बड़े होटल में रहते हैं। डेढ़ हजार मासिक तनखाह पाते हैं पर होटल का मासिक बिल छः महीने तक उधार चढ़ा रहता है। तनखाह मिलते ही यदि उधार लेने वाले आ न पहुंचें तो तनखाह सप्ताह भर में ही समाप्त हो जाती है और फिर मित्रों से दस-दस, पांच-पांच उधार मांगते फिरना! सब से बड़ा प्रलोभन तनखाह मिलते ही राम के सामने आता है, घुड़दौड़ में बाजी लगाने का।

राम बाबू से अपनी अन्तरङ्गता चली आ रही है। उसकी दयनीय दशा देख कर डेढ़ हजार रुपये माहवार पाने वाले व्यक्ति की तुलना में, उससे लगभग एक चौथाई तनखा पाकर भी अपना जीवन सन्तुष्ट समझने का संतोष होता है और एक सफल आदमी को उपदेश दे सकने की महत्वाकांक्षा भी पूरी होती है। राम का जीवन एक खूब ऊंचे लम्बे बांस जैसा जान पड़ता है जो बिना किसी सहारे के अकेला खड़ा है। हवा और आंधी में ऐसे झूलता है कि जब चाहे गिर जाये। हम लोगों के जीवन बीसियों टेकों और रस्सियों से पृथ्वी के साथ जकड़े हुये हैं। ऊंचे न सही पर हमारे जीवन के हरदम गिर पड़ने की आशंका भी नहीं।

राम को कई बार समझाया—"यदि तुम से अपने खर्च की व्यवस्था ठीक से नहीं हो पाती तो तनखाह मिलने पर हमारे यहां अपनी भाभी के पास जमा कर दिया करो। वह बड़ी समझदार है। देख लो, चार सौ में घर चलाती है। आड़े समय के लिये कुछ बचा भी रखती है। जानते हो, बाल-बच्चे वाला घर है!······तुम आवश्यकतानुसार रुपया ले लिया करो।"

राम बाबू ने दैन्य से दांत निकाल हंसते हुये इन्कार में हाथ हिला दिया—"यह बात नहीं! आखिर करें भी तो क्या?············बस ऐसे ही चलता है।······विवशता है!"

"विवशता है?······तनखाह मिलते ही पांच सौ-हजार घुड़दौड़ में लगा देने की तुम्हें क्या विवशता है? तुम आशा करते हो, पचास हजार मिल जायगा और जेब का पांच सौ-हजार भी खो बैठते हो। तुम्हें पचास हजार

की जरूरत ही क्या है ? क्या डेढ़ हजार में गुजारा नहीं चल सकता ? हम लोगों को देखो ! · जेब का रुपया खो देने पर जो परेशानी होती है वह साफ ही है। मान लो, पचास हजार आ जाय और वह भी-दांव पर लगा दिया तो ?" तर्क से राम बाबू को समझाने का यत्न किया।

"सवाल गुजारे का नहीं है भाई, फिक्र तो यह है कि युग गुजरता जा रहा हूँ!" राम ने विवशता में हाथ फैला अपनी बदहुत के छिलके जैसी हजामत बढ़ी ठोडी उठा दी, "पचास हजार की जरूरत नहीं, ठीक कहते हो! ··हजार में ही काम चल सकता है, यह भी ठीक है पर आदमी करे क्या ? और करे किस के लिये ?" कुर्सी पर सम्भल कर उसने कहा, "सुनो, एक बाजी लगा देने से ऐसा मालूम होता है कि कोई ऐसी चीज सामने आ गई है जिस में आदमी डूब गया हो ! सब कुछ उसी के लिये है, समझो ! उससे परे कुछ दिखाई नहीं देता। आशा और आशंका की झनझनाहट अनुभव होने लगती है। कुछ देर के लिये जिन्दगी की गर्मी महसूस होती है। एक सनसनाहट ! जीवन की एक झनकार ! एक थ्रिल मालूम होती है। आदमी जिन्दगी के बोझ को भूल जाता है। जिन्दगी स्वयं ही दौड़ पड़ती है, उसे ढोना नहीं पड़ता। मन उमग पड़ता है कि जूझ जायें ! ·· नहीं तो जिन्दगी में है क्या ? बाजी हार गये तो क्या और जीत गये तो क्या ? गरमी तो बाजी की होती है, थ्रिल की होती है। वह थ्रिल ही सब कुछ है।" राम शिथिलता से कुर्सी पर लुढ़क गया, "और जब जिन्दगी में गरमी या थ्रिल नहीं रहती तो फिर सुस्ती या थ्रिल के अभाव को अनुभव न करने के लिये, उसे डुबो देने के लिये, मन में गरमी पैदा करने के लिये तबीयत होती है कि पियो ! अगर न पियो तो सोचते रहो कि जिन्दगी किस लिये है ?" राम ने उत्तर मांगने के लिये दीनता से हाथ फैला दिये।

राम उस रोज बीस रुपये उधार मांगने आया था। जानता था देना ही पड़ेगा परन्तु रुपया उधार दे देने से पहले इतने समर्थ मित्र की भलाई के विचार से यह बता देना भी कर्तव्य समझा—"देखो, आड़े समय तुम्हें दस-बीस रुपये उधार दे सकता हूं। बताओ, जीवन में तुम सफल हो या मैं ? रामू भैया, जिन्दगी को जान-बूझ कर ढलवान पर ढकेलते जाने में ही क्या संतोष ?··· एक दिन ऐसी जगह पहुंच जाओगे कि ऊपर चढ़ना सम्भव ही न रहेगा ! कहीं एक जगह पांव टिका कर फिर ऊपर की ओर चढ़ने की कोशिश करनी चाहिये।

······इतना घुड़दौड़ में उड़ा देना, इतना पी डालना और रहा-सहा छोकरियों को खिला देना; इन बातों में क्या तत्व है ?···तुम्हारे हाथ में क्या रह जाता है ? भाई, जीवन में कुछ स्थिरता तो हो ! ······तुम्हारे हाथ में प्रतिभा और पैसा दोनो हैं। तुम चाहो तो क्या नहीं कर सकते ?"

"बताओ मैं क्या करूं ?······मैं क्या कर सकता हूं ?" राम ने ठोड़ी पर हाथ रख मेरे परामर्श के प्रति विवशता प्रकट की, "डेढ़ हजार रुपये से ज्यादा तनखाह की आशा मेरे लिये इस व्यवसाय में नहीं हो सकती। इसके आगे एक ही महत्वाकांक्षा हो सकती है कि मैं अपना पत्र चलाने की बात सोचूं। मैं इतना मूर्ख नहीं हूं कि साधनहीन होकर भी अपरिमित साधन पत्र-मालिकों से होड़ करने की बात सोचूं और वह सिर-दर्दी मैं समेटूं किस के लिये ?······मैं डेढ़ हजार रुपये में अपना श्रम बेचता हूं परन्तु मैं अपने पूंजीपति मालिक के हाथ में एक चाबुक की तरह हूं। तुम समझ लो, मेरा मालिक मुझे जनमत पैदा करने की कीमती मशीन समझता है जिसे वह अपनी सामाजिक और राजनीतिक शक्ति बनाये रखने के लिये चला रहा है। इससे मशीन को क्या फायदा ?······क्या संतोष ?···मशीन का अपना क्या अस्तित्व ?

"सुनो, मैं इतना मूर्ख नहीं हूं कि अपने पूंजीपति मालिक की दृष्टि में उपयोगी हो सकने के कारण अपने व्यक्तित्व को कोई खास महत्वपूर्ण चीज समझ बैठूं। मैं यह भी जानता हूं कि जो आदमी डेढ़ हजार रुपये माहवार दे सकता है, वह पैसे के लिये बातूनी कलाबाजी करने वाले मुझ जैसे बीसियों आदमी खरीद सकता है। मुझ से तेज बीसियों पड़े हैं, जिन्हें अवसर नही मिल रहा, वे हजार-आठ सौ लेकर वही कलाबाजियां कर सकते हैं जो मैं पन्द्रह सौ में करता हूं। कहो, किस बात के लिये पांव जमाने की कोशिश करूं ?

"बताओ, ज़िन्दगी में क्या उद्देश्य बना लूं ? अगर एक औरत घर में लाकर, उसे और उसके बच्चों को ही पालना शुरू कर दूं तो यही कौन बड़ा काम है !" राम ने प्रश्न में मुंह फैला अपने टूटे हुये दांत दिखा दिये, "किसी ने मुझे खरीद रखा है, किसी को मैं खरीद लाऊं ?···यदि मुझे उसका स्वभाव और व्यवहार असह्य जान पड़ा तो ?······मेरे जैसे दो-चार और मनुष्य पैदा हो जायंगे तो इससे समाज का क्या बन जायगा ?······मेरा मालिक मेरा उपयोग करता है। मैं अपने आपको भुलाने की चेष्टा कर आत्माभिमान बचाये हूं। अच्छा, अब बीस रुपये निकालो, बहुत जरूरत है !" राम ने उठने के लिये

तैयार होकर कहा, "भई, आज शारदा के यहां जाना चाहता हूं। तबीयत बड़ी सुस्त है। जल्दी करो!"

"चले जाना।" मैंने कहा, "ऐसी जल्दी क्या है?"

"जल्दी ही है। फिर कोई दूसरा वहां जा बैठेगा तो मुश्किल होगी न!" राम उतावली से बोला, "निकालो न रुपये!"

"शारदा के यहां आखिर क्या मिल जायेगा?" मैंने समझाना चाहा।

"क्या मिल जायगा?" हाथ हिलाते हुये राम ने उत्तर दिया, "दो-तीन घण्टे अपने आपसे चिढ़ूंगा नहीं। ··खिन्नता नहीं अनुभव करूंगा। उसकी बातों में भूला रहूंगा। दिल-बहलाव रहेगा!"

"जब तुम जानते हो।" मैंने आग्रह किया, "कि उसके यहां बीसियों आदमी आते-जाते हैं तो उसकी बातों में बहलना धोखा नहीं?"

"जान कर जाता हूं तो धोखा नहीं है।" राम समझाने के लिये शिथिलता छोड़ कुर्सी पर आगे झुक गया, "मैं कौन उसका उम्र भर का ठेका लेने को तैयार हूं! बीस रुपये दूंगा, रात भर का हक होगा। तुम क्या चाहते हो, वह मुझे यह कहे कि वह मेरे सिवा और किसी को जानती ही नहीं!···मेरे लिये जान दे देगी! ऐसा कहे तो धोखा समझो।·· उस पाखंड में क्या रखा है? सच पूछो तो वह निन्यानवे फीसदी पतिव्रताओं से ज्यादा ईमानदार है।"

राम की बात का विरोध किया—"वह ईमानदार है? उसके साथ ईमानदारी का सवाल ही क्या?"

"है कैसे नहीं? पहली ईमानदारी तो उसकी यही है कि वह ईमानदारी का दम नहीं भरती। वह ऐसी जगह बैठी है जहां बात साफ है कि सम्बन्ध या मित्रता पैसों की है। अगर किसी का मन धोखे के बिना न मानता हो तो इसमें अधिक जो चाहे समझ ले!"

"जब जानते हो कि कुछ घण्टों के रिझाव का किराया दे रहे हो तो उसे प्रेम और मित्रता समझ सकते हो?" मैंने तर्क किया।

'प्रेम और मित्रता क्या है? कुछ घण्टे अपने मन की खिन्नता भुलाने का मोल है भैया! जैसी बात मैं चाहता हूं, वैसी ही वह करती है। बस इसी बात का दाम है और फिर प्रेम होता क्या है? किसी से संतोष पाने से ही तो प्रेम होता है! जिन्दगी भर का प्रेम मेरी समझ में नहीं आता! जिस से मन ऊबने लगे उस में प्रेम कैसा? बिना प्रेम अनुभव किये प्रेम के अभाव की

तुलना कैसे की जाये ? यदि मैं उसे छल करने के लिये विवश न करूं तो वह छल नहीं करती।"

"छल नहीं करती?" मैंने राम को कोंचने के लिये विस्मय प्रकट किया।

"हां, छल नहीं करती है ! पिछले दफे जब मैं उस के यहां गया तो यों ही थकावट सी अनुभव कर मैंने कहा—झरना मेरे शरीर पर पाउडर लगा कर मालिश कर दो। वह मालिश कर रही थी। मुझे अच्छा लग रहा था। उस से कुछ बात करने के लिये पूछ बैठा—मुझे तो मालिश करवाने से अच्छा लग रहा है परन्तु तुम्हें इससे क्या संतोप मिलता है ?"

"मेरी जांघ पर बहुत सा पाउडर डाल, उसे हाथों से सूतते हुये उसने उत्तर दिया—"संतोष क्यों नहीं बाबू ? टका मिलता है।"

"मैंने बात बढ़ाई—"टका ही मिलता है न !···संतोष तो नहीं मिलता ?"

"टके से ही संतोष होता है बाबू !" उसने उत्तर दिया, "पेट भरना है तो टका चाहिये। टके के लिये करती हूं, नहीं तो तुम टका क्यों दो ?"

"टके के लिये करती हो ?" मैंने फिर पूछा, "अगर तेरे पास काफी रुपया होता तो क्या करती ?"

"करती क्या बाबू ?···करती यह कि मजे से लेट जाती और किसी को बीस रुपये देकर कहती कि रात भर मेरे शरीर की मालिश करो !"

राम ने कुर्सी पर सम्भलते हुये प्रश्न किया—"बोलो, है ईमानदार कि नहीं ?" फिर ताव में आकर बोला, "मैंने झरना से पूछा, यह काम क्या तुम्हें अच्छा लगता है ?···तुम सन्तुष्ट हो ?"

"उसने उत्तर दिया—"बाबू, क्या सब लोग संतुष्ट ही हैं ? मनचाहा ही काम करते हैं ? पेट बहुत कुछ कराता है बाबू, जैसे और सौ काम यह भी एक काम है। पालने वाला कोई एक न हुआ, दस-बीस के ही सहारे जिन्दगी काट रही हूं। दस बुरा कहते हैं तो दस को अच्छी लगती हूं।···चोरबाजार करने वाले को सब गाली देते हैं तो क्या कोई अपना धन्धा छोड़ देता है ? मैं कौन [illegible]ली बात करती हूं बाबू ! अच्छा बाबू, अपने-अपने घरों में दूसरी सब औरतें [illegible]। करती है ?"

"मैंने समझाया—"झरना, कैसे-कैसे आदमी तेरे यहां आते हैं ! उसे गुलजारासिंह की याद दिलाई। गुलजारासिंह ड्राइवर है। तारकोल के पीपे की तरह काला, मोटा और चिपचिपा; तिस पर सूखी झाड़ी सी दाढ़ी, दुर्गन्ध

भरी पगड़ी। उसे झरना के यहां आते देख मुझे घृणा होती है। उस की याद दिला कर मैंने कहा—"कैसे-कैसे भूतों के साथ सो जाती है तू !"...... "बुरा नहीं लगता ?"

"क्या बुरा लगता है बाबू ? बाबू, यही बात तुम गुलजारासिंह की बहू से पूछो"... "उस की बहू 'न' कर सकती है ? वह उसे रोटी देता है। मुझे भी कभी-कभी देता है। वह कभी-कभी आता है। 'कैसे इनकार करूँ ?" अच्छा बाबू, तुम जिस मालिक की नौकरी करते हो, तुम्हें क्या बहुत प्यारा लगता है ? बाबू, जो अन्न देता है, अपना काम लेता है। तुमने नहीं देखा, कैसे-कैसे भुसड सेठ परियों को लिये फिरते हैं। कोई भलीमानस परी इस पर एतराज करती है ?"...उन्हें सेठ का क्या प्यारा लगता है ? पैसा ही तो !"...बाबू, तुम बीस देते हो, तुम्हारी बात दूसरी है, पुराना साथ है। गुलजारासिंह आता है, पच्चीस-तीस दे जाता है। बोतल साथ लाता है। कभी साड़ी, कभी कपड़ा अलग से दे जाता है। बाबू, आदमी साथ नहीं सोता उसका पैसा साथ सोता है !"

राम उच्छृङ्खलता पर उतर आया था। मैं चौंका, रसोई में बैठी बच्चों की माँ इस की बात सुन न रही हो।

"बस ! बस !" हाथ के संकेत से उसे चुप करा रुपये लेने भीतर के कमरे में चला गया।

प्रधान मंत्री से भेंट

रामराज्य, स्वराज्य या गणराज्य की स्थापना के बाद से भारतीय प्रजा या नागरिकों ने अधिकारों का आश्वासन पा लिया है। इन अधिकारों में से एक बड़ा अधिकार है अपनी व्यक्तिगत या मामूली से मामूली शिकायतों के लिये मन्त्रियों और प्रधान मन्त्रियों तक से भेंट की मांग कर सकना। इस अधिकार को व्यवहार में लाने के लिये जनता बहुत उतावली भी जान पड़ती है। भारत की प्रादेशिक राजधानियों में सूर्योदय के समय ही अनेक प्रकार की पोशाकें पहने लोग, जिनमें खद्दरधारियों की संख्या अधिक रहती है, मन्त्रियों मुख्य-मन्त्रियों और केन्द्र में प्रधान मन्त्री के निवास-स्थान की ओर बढ़ते हुये दिखाई देते हैं। यह लोग अपने-अपने सामर्थ्य के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार की सवारियों पर सवार रहते हैं। कुछ लोग इस दावे से कि अब जनता का ही राज्य है, सवारी के लिये दाम न होने पर स्टेशन से पैदल ही मन्त्रियों के निवास-स्थान की ओर चल देते हैं, जैसे लोग तीर्थ-स्थान की ओर पैदल जाने में लज्जा अनुभव नहीं करते।

प्रधान मन्त्री के बंगले का बरामदा भेंट करने के लिये उत्सुक अभ्यागतों या यात्रियों से भर चुका था। प्रधान मन्त्री के निजी सहायक (प्राईवेट सेक्रेटरी) बरामदे में प्रकट हुये। बहुत समय तक प्रधान मन्त्री के स्वभाव और व्यवहार की छाया में रहने के कारण महापुरुष का काफी प्रभाव इन पर पड़ चुका है। बाहर आते समय खद्दर की श्वेत टोपी की नोक ठीक करने के लिये उठे हुये उन के हाथ विस्मय में फैले रह गये और माथे पर त्योरियां पड़ गयीं।

"आप लोग···आप लोग इस तरह चले आते हैं ?······आप लोगों को इस बात का जरा ख्याल नहीं कि प्रधान मन्त्री के पास इतना समय नहीं है।···

आप लोग नहीं जानते कि कितनी बड़ी-बड़ी समस्याओं का बोझ उन के कंधों पर है ? "आप लोग उन्हें अपनी छोटी-छोटी बातों से परेशान करने के लिये चले आते हैं। आप लोगों की समझ का दायरा कितना तंग है ! आप जानते हैं आज मंत्री सभा (कैबिनेट) की कितनी जरूरी बैठक है और प्रधान मन्त्री बैठक में जा रहे हैं। इस समय वे आप लोगों से किसी भी हालत में भेंट नहीं कर सकते !" प्रधान मंत्री के निजी सहायक ने अभ्यागतों को समझाने की कोशिश की, "आप लोगों को इतना भी व्यवहारिक ज्ञान नहीं कि भेंट करने से पूर्व समय निश्चित कर लेना आवश्यक है ?"

सम्मानित पोशाक पहिने तीन अतिथि एक साथ उठ खड़े हुये और जेब अथवा बेग से कागज निकाल कर दिखाने का यत्न करते हुये उन्होंने आग्रह किया कि वे मुलाकात निश्चित हो जाने पर ही आये हैं।

उनकी बात पूरी हो सकने के पहले ही दूसरे अभ्यागत हाथ जोड़, गिड़गिड़ा कर बोल उठे—"मैं तीन दिन से भेंट के लिये समय निश्चित करने का यत्न कर रहा हूं। कोई सुनवाई नहीं हुई……।"

"मुझे सिर्फ एक वाक्य कहना है।" एक और अभ्यागत बोले।

अनेक अभ्यागत एक साथ बोल उठे—"केवल दर्शन …!"

एक ओर से पुकार उठी—"हम बीस हजार व्यक्तियों की ओर से भेजे गये प्रतिनिधि ……"

दूसरी ओर से आवाज आई—"अन्न-संकट में हजारों व्यक्ति …"

"डिप्टी कमिश्नर के अन्याय ……"

"गोली चल गई। पांच आदमी …… …"

परेशानी से प्रधान मंत्री के निजी सहायक की आंखें भिंच गईं और उनके हाथ आशंका में ऐसे उठ गये जैसे कोई आदमी मधुमक्खी के दल को अपने ऊपर झपटते देख आत्मरक्षा के लिये घबरा गया हो।

"चुप रहिये आप लोग !" …जो लोग प्रधान मंत्री के दर्शन करना चाहते हैं, वे एक लाईन में सड़क पर खड़े हो सकते हैं ! प्रधान मंत्री अभी मंत्री सभा (कैबिनेट) की बैठक के लिये जा रहे हैं। जो लोग उन से कुछ निवेदन करना चाहते हैं, बरामदे में लाइन बांध लें। कृपया याद रखिये, जो जो कुछ कहना हो, दो शब्दों में, बहुत संक्षेप से कहिये।" निजी सहायक ने फिर दोनों हाथ उठाकर अभ्यागतों को समझाने के लिये अपनी बात दोहराई।

हाथ में कागजों का छोटा सा पुलिंदा लिये महाशय 'क्ष' ने दुबारा साहस किया—"आपने मुझे इस समय आने के लिये लिखा है।"

"चुप रहो !" निजी सहायक ने उद्विग्नता से हाथ उठाकर उन्हें बैठे रहने का संकेत किया।

"मेरा मामला बहुत दिन से प्रधान मंत्री के सामने है……।" महाशय क्ष ने फिर आग्रह किया और अपने हाथ के कागज दिखाते हुये बोले, "मैं यह कागज उन्हें सौंप देना चाहता हूं।"

निजी सहायक शायद महाशय क्ष और उनके मामले से कुछ परिचित थे, बोले—"आपका मामला प्रधान मंत्री देख चुके हैं। विश्वास रखिये, आप का काम हो जायेगा परन्तु इस समय आप उन्हें परेशान न कीजिये। इस समय प्रधान मंत्री बहुत ही व्यस्त हैं।" निजी सहायक ने एक दफा फिर सभी अभ्यागतों की ओर देख कर चेतावनी दी, "इस समय प्रधान मंत्री बहुत व्यस्त हैं। आप फिर किसी समय मिल सकेंगे। प्रधान मंत्री एक मिनिट में आने वाले हैं।" निजी सहायक यह चेतावनी दे भीतर चले गये।

लगभग दो मिनिट बाद प्रधान मंत्री खद्दर की श्वेत अचकन, चूड़ीदार पाजामा और सफेद टोपी पहने हुये निजी सहायक के साथ बाहर निकले। उनके दायें हाथ में लिपटे हुये कुछ कागज थे। प्रौढ़ावस्था प्राप्त प्रधान मंत्री यौवन की मुद्रा में चपल चरणों से चले आ रहे थे। अभ्यागतों की ओर देख सौजन्य की एक मुस्कान उनके चेहरे पर आ गई। कागज पकड़े दायें हाथ को बायें हाथ के सहयोग से उठाकर उन्होंने अभ्यागतों को एक सार्वजनिक नमस्कार किया और ड्योढ़ी में खड़ी मोटर की ओर बढ़ने लगे।

अभ्यागतों के हाथ नमस्कार के लिये उठे। कुछ एक के होंठ हिले परन्तु प्रधान मंत्री के निजी सहायक की चेतावनी के कारण शब्द मुख से न निकल सके।

महाशय क्ष अपने आप को सम्भाल न सके। हाथ के कागज आगे बढ़ा बोल उठे—"मैं यह काम………।"

प्रधान मंत्री उछल कर महाशय क्ष के सामने जा पहुंचे—"चुप रहो ! रहो !! यह क्या बत्तमीजी है ?" गम्भीर अपराध के लिये प्रतारणा की मुद्रा में प्रधान मंत्री ने आंखें निकाल कर फटकारा।

"मैं……मैं……।" महाशय क्ष भय से हकला गये।

"क्या बकवास है ? मैं…मैं…मैं कहता हूं चु-चुप रहो। मैं…मैं कहता हूं

चुप रहो !" प्रधान मंत्री भी क्रोध मे हकला गये, "तुम लोग नही समझते कि कितनी बडी-बडी समस्यायें, कितने बड़े-बड़े मसले, कितनी बडी-बडी बातें मुल्क के सामने हैं। तुम लोग जरा-जरा सी बातों को लेकर यहाँ चले आते हो!" प्रधान मंत्री ने कापते हुये दोनो हाथो की मुट्ठियाँ बाध कर समझाया।

"जी ......!" महाशय क्ष ने क्षमा-सी मागते हुये अपने हाथ के कागज प्रधान मन्त्री की ओर उठा कर फिर साहस किया।

प्रधान मन्त्री ने अपने हाथ के कागज फर्श पर पटक दिये और महाशय क्ष के हाथ से भी कागज छीन कर फर्श पर पटक दिये और दोनों हाथों से महाशय क्ष के कंधों को खूब झिझोड कर समझाया—"जी ! जी ! जी मैं कहता हू चुप रहो ! चुप रहो !! चुप रहो !!! तुम लोग तमीज कब सीखोगे ?"

महाशय क्ष एक हिचकी ले स्तब्ध रह गये। उन्हें चुप करा देने मे सफल होकर प्रधान मन्त्री ने अपने पीछे चलते दो अर्दलियों और निजी सहायक की सहायता की उपेक्षा कर फर्श पर पटके हुये कागज उठा लिये और अपनी उत्तेजना को वश मे करने के लिये बांये हाथ से अचकन का बटन ऐंठते हुये, तेज कदमो से ड्योढी में खड़ी मोटर की ओर चल दिये।

मोटर के ड्योढी से बाहर निकलते ही पीछे रह गये प्रधान मंत्री के निजी सहायक क्रोध मे आँखें लाल किये महाशय क्ष के सामने पहुंचे। दांत पीस कर क्रोध से ऊंचे स्वर में उन्होंने क्ष को फटकारा—"कितने बत्तमीज हैं आप! ... आप को कितना समझाया था लेकिन आप.... !"

"जी !" महाशय क्ष ने फर्श से उठाये कागज दिखाकर क्षमा सी मागनी चाही।

"फिर वही बात जी ! जी ! जी !..." निजी सहायक का क्रोध विस्फोट की सीमा पर पहुंच गया, "चुप रहो ! चुप रहो !! कितनी अच्छी तरह आप को समझा दिया था लेकिन आप बाज नहीं आये। कितने बदकिस्मत हैं आप! अपना बना-बनाया मामला आपने खराब कर लिया और अब भी चुप नहीं रहना चाहते !"

"जी मैं......!"

"जी, जी ! जी ! अब भी चुप नहीं रहना चाहते ? चले जाइये यहां से।" निजी सहायक ने फैली हुई बांह से बंगले के फाटक की ओर इशारा करते हुये धमकी दी।

"जी मैं यह कहना चाहता हूं" महाशय क्ष के उत्तेजित स्वर को यथासंभव ऊंचा करते हुये साहस किया, "कि प्रधान मन्त्री अपने कागज मुझे दे गये हैं और मेरे कागज ले गये हैं।"

"हैं! हैं! हैं! गजब हो गया।" निजी सहायक घबरा गये, "दूसरी मोटर! मोटर जल्दी लाओ!" उन्होंने पास ही खड़े अर्दली को हुक्म दिया।

महाशय क्ष के हाथ से कागज झपटकर निजी सहायक तुरन्त ड्योढ़ी के समीप खड़ी दूसरी मोटर में प्रधान मन्त्री का पीछा करते चले गये।

मार का माल

जयकृष्णप्रसाद कलकत्ते में व्यवसाय कर रहा था। पहले उसने अपने दूर के किसी सम्बन्धी के साझे में व्यवसाय आरम्भ किया था। तब उसे व्यापार के दाव-पेंच और पैंतरों का कोई ज्ञान न था। आरम्भ में बच्चों को गडीरे पर चलना सिखाया जाता है परन्तु चलना सीख जाने पर गड़ीरे की सहायता की आवश्यकता नहीं रहती; बच्चे यों ही दौड़ लगाने लगते हैं। वैसे ही जयकृष्णप्रसाद एक बार व्यवसाय के क्षेत्र में कदम जमा लेने पर तेजी से स्वतन्त्र व्यवसाय करने लगा। कलकत्ते के मझले दर्जे के बाजार में उसके पांव अच्छे-खासे जम गये थे।

जयकृष्णप्रसाद को उस के बालसखा गोवर्धनप्रसाद का पत्र मिला। गोवर्धन किसी आवश्यक काम से कलकत्ते आकर उसका अतिथि बनने वाला था। बालसखा से मिलने और कुछ समय उसके साथ निस्संकोच विनोद में काट सकने की आशा से जयकृष्णप्रसाद का मन पुलकित हो उठा। उसकी प्रसन्नता में अहंकार से अपनी सफलता दिखाने की इच्छा भी मिली हुई थी। देहात में रहने वाला गोवर्धनप्रसाद उसके कलकत्ते के ढंग और ठाठ देख अवाक रह जायेगा! ऐश्वर्य का सुख केवल भोग की तृप्ति में नहीं होता। ऐश्वर्य का प्रदर्शन भोग से अधिक संतोष देता है। जयकृष्णप्रसाद ऐसे ही गर्व की उमग अनुभव कर रहा था। गोवर्धन को अपने ढंग से चकित कर देने के लिये उसने सौ-सौ के तीन नोट बटुये में रख लिये थे।

गोवर्धन के मानसिक विकास पर उस के नाम का काफी असर था या बिहार के देहात का प्रभाव था कि इतनी आयु हो जाने पर भी गोवर्धनप्रसाद 'गोबर-धन' बना रहा था। वह संसार को अपने कस्बे से विस्तृत और विचित्र नहीं समझता था। कलकत्ते की विशालता, विस्तार और कल्पनातीत जनप्रवाह से वह स्तब्ध-सा रह गया।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

जगदम्बाप्रसाद [illegible] [illegible] बस [illegible] दिखाई पड़ रहा था। [illegible] दिखाई दी। वे दोनों उस पर सवार हो कर गये। बस में काफी भीड़ लगी हुई थी। दो-चार आदमी [illegible] भी थे। जगदम्बाप्रसाद और [illegible] भी खड़े हो गये। [illegible] सब सीटें भर जाने पर आठ-दस आदमियों के खड़े रह कर जाने की इजाजत रहती है लेकिन भीड़ के कारण प्रायः अठारह-बीस आदमी [illegible] खड़े होकर चलते हैं। इस [illegible] बस में जगदम्बाप्रसाद और [illegible] खड़े, उसमें भीड़ नहीं समझी जा सकती थी। जगदम्बाप्रसाद बस में खड़े रहते समय सहारा लेने के लिये बस की छत में लगे चमड़े के पट्टे को थामे, [illegible]

में खड़ा था। गोवर्धन चलती मोटर में खड़े रहने का अभ्यास न रहने के कारण लड़खड़ा गया और गिरते समय सहारे के लिये फैला हुआ उस का हाथ समीप की सीट पर बैठी एक बंग रमणी के कंधे पर जा पड़ा। अवसर की बात, उसे खड़े होने की ऐसी ही जगह मिली थी।

इससे पहले कि गोवर्धन सभल पाये, रमणी के समीप सीट पर बैठे हुये एक बंगाली भद्र पुरुष सीना फुला कर गरज उठे—"यह क्या अभद्रता है ? आदमी हो कि जानवर ?"

गोवर्धन सकपका गया परन्तु जयकृष्णप्रसाद ने बीच-बचाव कराने के लिये गोवर्धन की ओर से बंगला मे बोल कर क्षमा मागी कि बदनीयती का तो कोई सवाल ही नही। घटना केवल पैर फिसल जाने की विवशता के कारण हो गयी है। इस पर भी बंगाली भद्र पुरुष का क्रोध शांत होने मे कुछ समय लगा।

कुछ दूर चल कर दायीं ओर की सीटें खाली हो गयीं। जयकृष्णप्रसाद और गोवर्धन को भी बैठने की जगह मिल गई। बिहार के देहात से आये गोवर्धन को बिना घूंघट काढ़े, सकुच और सिमिट कर चलने वाली कोमलांगी कलकत्ते की रमणी के प्रति उसी प्रकार का कौतूहल हो रहा था जैसे सदा बड़े-बड़े, विरूप, धूल मे लिपटे और सीना फुलाकर लड़ने के लिये उतावले कुत्तों को देखने वाले देहातियों को लम्बे-लम्बे रेशमी बालों से ढके, गोद मे उठाये जाने वाले या कोच पर बैठाये जाने वाले बिस्कुट-आहारी कुत्तों को देख कर होता है। वह बार-बार आंख बचा कर उसी युवती की ओर देख रहा था जिसके कि कंधे पर अचानक उसका हाथ जा पड़ा था, जिसके लिये उसे फटकार सुननी पड़ी थी। यह सोचकर कि उस रमणी की रक्षा के लिये एक व्यक्ति साथ चल रहा है, गोवर्धन के मन में युवती के प्रति अति मूल्यवान समझी जाने के कारण आदर और श्रद्धा का भाव पैदा हो गया था। वह नागरिक लावण्य के प्रति आदर, श्रद्धा और कौतूहल से आखें चुरा-चुरा कर उस की ओर देखता रहा। मन ही मन उसने समझ लिया—यह है कलकत्ते के बड़े शहर की, बड़े घर की औरत !

गोवर्धन की सीट उस रमणी की पीठ के दाईं ओर बिलकुल सामने होने के कारण वह उनकी नजरों में ही थी। गोवर्धन मन का घूट लिये वैसे ही आदर से रमणी को देख रहा था जैसे समझदार बालक पूजा के लिये बनी झांकी को, उसे छू देने से बिगड़ या टूट जाने की आशंका से सहमा हुआ

देखता है। उस ने विभिन्न केश-विन्यास थे, चेहरे पर उजली ओस की सी सफेदी थी, भौंहें पर बनी विभिन्न किस्म की थीं, होंठों पर लाली लगी थी, बड़ी-बड़ी आंखों के कोनों में काली एक तिरछी रेखा खींची थी। ऐसे ही ऐसे सुकुमार शरीर और आकर्षक रूप तो उसने कभी नहीं देखा था। उस के कुछ समय बैठे रहने पर गोवर्धन को युवती के अपनी ओर से दिखाई देते भाल पर कुछ निशान से दिखाई दिये। उन निशानों के और गोवर्धन अपना कौतूहल न दबा सका। समीप बैठे मित्र की बांह दबा उसने दबे स्वर में अपनी देहाती बोली में पूछ ही तो लिया—"इस के माथे पर यह निशान कैसे है ?"

जयकृष्ण ने ध्यान से देखा और दबे स्वर में ही समझाया—"क्या पागल है ? और कहां का निशान है ? [illegible] उर्मिला के आंसू का निशान है। साफ तो दीखता है।"

गोवर्धन के मन में सहानुभूति और करुणा भी उमड़ आई। उसे ख्याल आया, ऐसी कोमल और सुन्दर नारी पर भी प्रहार पड़ सकता है ? उस रमणी के प्रति आदर के विचार से गोवर्धन ने उस ओर से आंखें हटा लीं। बहुत देर तक वह मन ही मन यही सोचता रहा, इस विशाल नगर की विशाल अट्टालिकाओं में ऐसी ही अगणित आकर्षक कोमल रमणियां भरी होंगी। इतने आदर में थप्पड़ पड़ने पर वे सहम कर चुप रह जाती होंगी ? देहातिनों की तरह कांय-कांय कर छप्पर सिर पर न उठा लेती होंगी ?

चौरंगी पर आकर जयकृष्णप्रसाद के इशारे पर गोवर्धन भी बस से उतर गया। बड़ी-बड़ी दूकानों के सामने संध्या समय ही गई चकाचौंध रोशनी में घूमते हुये जयकृष्ण ने प्रस्ताव किया—"चलो तुम्हें कलकत्ते का रंग दिखायें !"

वह गोवर्धन को बांह से थामे 'ग्रेटईस्टर्न बार' में ले गया। बिजली की रोशनी से जगमग लम्बे से कमरे में, जगह-जगह लोग मेजों को घेरे हुये कुर्सियों पर बैठे थे। उनमें कितनी ही स्त्रियां थीं जो मर्दों की बगल में बैठीं, कहकहे लगाती हुई चुहल कर रही थीं। गोवर्धन के लिये यह दृश्य कल्पनातीत था। वह इन स्त्रियों को समझ नहीं पा रहा था। पहनने-ओढ़ने, चेहरे की कोमलता और केश-विन्यास से वे सब शहर के सम्मानित बड़े लोगों की मेम साहिबा ही जान पड़ती थीं परन्तु उन का व्यवहार था मर्दों से भी बढ़ कर निस्संकोच। गोवर्धन विस्मित था। कलकत्ते में यह कैसी स्त्रियां हैं जिन्हें संकोच और भय नहीं ?

जयकृष्णप्रसाद ने ह्विस्की के दो पेग मंगवाये और उसमें सोडा मिला कर एक गिलास गोवर्धन की ओर बढ़ा कर बोला—"बेटा, यह विलायती ताड़ी चखो !"

अपने देहात में गोवर्धन घर और बिरादरी के बड़े-बूढ़ों की नजर बचा कर कई बार ताड़ी चख चुका था इसलिये मित्र के साथ इस अपरिचित जगह में शराब पी लेने में उसे कोई आपत्ति न थी। शराब के नशे से अधिक फुरफुरी उसे हो रही थी उन स्त्रियों को देख कर।

"यह कैसी औरतें हैं ?" गोवर्धन मित्र से पूछे बिना न रह सका।

"देख लो, सामने ही तो हैं ! ... ... कैसी होती हैं औरतें ?" मुस्कराकर जयकृष्णप्रसाद ने उत्तर दिया।

कुछ देर बाद जयकृष्णप्रसाद ने गोवर्धन को कोंच दिया—"क्यों पसन्द है कोई ?... बात करोगे ?"

मित्र की मुस्कराहट से गोवर्धन ने अपने मस्तिष्क पर ज़ोर देकर समझा कि शराबखाने में हंसी-ठिठोली करने वाली औरतें कैसी हो सकती हैं ? मित्र के साथ एक ओर बैठा हुआ वह इस अद्भुत दृश्य को देख रहा था। उन निस्संकोच युवतियों से आखें मिल जाने पर उसे असुविधा अनुभव होने लगती।

गोवर्धन अपनी बाईं ओर की मेज पर दो आदमियों के बीच हरी साड़ी पहने बैठी एक युवती को बराबर देख रहा था। उसके अट्टहास से गोवर्धन का ध्यान कई बार आकर्षित हो चुका था। फिर अट्टहास सुन गोवर्धन की आखें उसकी ओर गयी। गोवर्धन ने देखा कि युवती के दाईं ओर बैठा व्यक्ति उसे पांच रुपये का एक नोट दिखा रहा था। युवती ने पांच रुपये के नोट के उत्तर में अंगूठा दिखा दिया और दूसरे हाथ से उस मर्द की कमीज की जेब से दस-दस के दो नोट खींच लिये। मर्द ने अपने नोट वापिस छीन लेने के लिये हाथ बढ़ाया। युवती उसके हाथ की पहुंच से बचने के लिये दूसरी ओर झुक, नोटों को अपने ब्लाउज में खोंसती हुई मुस्करा दी।

नोट दिखाने वाला व्यक्ति यह सीनाजोरी सह जाने के लिये तैयार नहीं था। उसने दूसरे हाथ से युवती की कलाई ज़ोर से मरोड़ दी।

युवती के मुंह से चीख-सी निकल गई 'उफ़' ! उसके माथे पर बल पड़ गये। सहसा उस का थप्पड़ कलाई मरोड़ने वाले व्यक्ति के मुंह पर जा पड़ा। दूसरे हाथ से उस ने नोटों को मर्द के मुंह पर फेंक दिया।

बार का मैनेजर और दो एक बैरे 'क्या है ? क्या है ?' कहते हुये उस मेज पर आ गये। उन लोगों ने बीच-बचाव कर स्थिति शांत करने के लिये युवती को वहां से उठा दिया।

वह युवती उठ कर दूसरी मेज पर जा बैठी और आवेश में जल्दी-जल्दी सांस लेती हुई कलाई मरोड़ने वाले व्यक्ति की ओर ऐसे घूरने लगी जैसे मार खाई बिल्ली आक्रमण करने वाले की ओर देखती है।

जयकृष्णप्रसाद ने एक ही घूंट में अपना शेष गिलास समाप्त कर गोवर्धन को भी गिलास समाप्त कर उठने का संकेत किया।

बाहर आकर जयकृष्ण अपने मित्र से बोला—"चले चलो यहां से, झगड़ा-बखेड़ा हो तो बैठने से क्या फायदा ?"

बाहर आकर भी गोवर्धन के मस्तिष्क पर उस दृश्य के आघात से छा गई मूढ़ता कम न हो पाई। उसे ऐसा जान पड़ रहा था जैसे औरत का थप्पड़ उसके ही मुंह पर पड़ा हो !

जयकृष्ण की बाँह दबा कर वह फिर पूछ बैठा—"देखो इस बदमाश औरत की हिम्मत ! और एक वह थी, बेचारी भले घर की शरीफ औरत बस में।"

मित्र की मूर्खता पर उपेक्षा से हंस जयकृष्ण ने समझाया—"इस हराम-जादी को कौन कोई उम्र भर का सहारा देने वाला है जो यह चुपके से मार खा जाय ?"

शहनशाह का न्याय

शहनशाह बहुत न्याय-प्रिय थे।

दरबार में उन के मुसाहियों ने उन की प्रशंसा की—"'''जहांपनाह बहुत न्याय-प्रिय हैं।"

यह बात सुन कर जहांपनाह को वह सुख हुआ जो अनेक साजों की लहरों पर बहती संगीत की नाव में बैठ, बेसुध हो जाने पर भी न हो सकता, जो सुरा 'सीराजी' के प्यालों से उत्तेजित हो, बेगम नूरेहरम की आंखों के नीले आकाश में पर फैला कर स्वच्छन्द उड़ानें भरने से भी न हो सकता था। उन्हें अनुभव हुआ, वे एक ऐसी हस्ती हैं जैसी कोई दूसरा शख्स नहीं हो सकता। उनके इस गुण के कारण संसार से उन के चले जाने पर भी लोग उन्हें याद करते रहेंगे।' वे सदा अमर रहेंगे।

शहनशाह न्याय-प्रिय तो थे ही, उन्होंने और भी अधिक व्यापक और पूर्ण न्याय करने का निश्चय कर लिया। निश्चय किया कि कोई भी गरीब-गुरबा उन के न्याय से वंचित न रह सके। उनकी प्रजा को अन्न मिले या न मिले, न्याय जरूर मिले। अन्न देना काम मौला का, न्याय करना काम राजा का। मौला अन्न दे या न दे, राजा न्याय करेगा।

आदिल (न्याय-प्रिय) शहनशाह ने सोचा—यों तो इंसाफ करने के लिये उन की तरफ से मुल्क भर में काजी, मुल्ला और दारोगा (नौकरशाही के अनेक रूप) तैनात हैं, मगर ये काजी, मुल्ला और दारोगा भी तो आखिर इंसान हैं। स्वार्थ और पक्षपात उन के भी मन में आ सकता है। वे अन्याय कर सकते हैं लेकिन प्रजा को न्याय मिलना चाहिये। काजी, मुल्लाओं और दारोगाओं के अन्याय से प्रजा को बचाना बादशाह सलामत का फर्ज है।

शहनशाह जानते थे कि उनके हुजूर में पहुँच पाना सर्वसाधारण के लिये

सहल नहीं था। राजमहल की ड्योढ़ी से लेकर उनके दरबार तक सैकड़ों सशस्त्र सिपाही पहर पर तैनात थे। सैकड़ों ख्वाजासरा तलवारें खींचे उन के हरम की ड्योढ़ियों पर मुस्तैद रहते थे, इसलिये शहनशाह ने हुक्म दिया कि महल में उनकी आरामगाह की खिड़की से नीचे जमीन तक एक बड़ा घण्टा लटका दिया जाये।

शहर में बादशाह सलामत के हुक्म से डौंडी पिटवा दी गई—'खलक खुदा का, मुलक बादशाह का; हर खासो-आम को इत्तला दी जाती है कि साहिवे-आलम, जहांपनाह, शहंशाहेमुअज्ज़म की आरामगाह की खिड़की से एक घन्टा लटका दिया गया है। जिस किसी बशर को इन्साफ तलब हो, इस घन्टे को बजा कर साहिवेआलम के हुजूर में अपनी फरियाद हाज़िर कर सकता है।'

शहनशाह की नौकरशाही, काजियों, मुल्लाओं और दारोगाओं ने जहाँपनाह का यह ऐलान सुना तो वे चिंतित हो गये। उन्होंने प्रधान काजी के सम्मुख जाकर दुहाई दी—"अगर इंसाफ जहांपनाह खुद करेंगे तो काजी, मुल्ला और दारोगा क्या करेंगे?"

प्रधान काजी मुस्करा दिये। उन्हें अपनी मातहत नौकरशाही की बुद्धि पर तरस आया। वे बोले—"बादशाह के न्याय का घन्टा बजाने देने का मौका किस के हाथ में है?······इस घन्टे की रक्षा करना किसका कर्त्तव्य है?··· बादशाह सलामत की नौकरशाही का! बादशाह सलामत देश की रक्षा करते हैं इसलिये देश के मालिक हैं। बादशाह सलामत की नौकरशाही, बादशाह सलामत की जात और उनके घन्टे की रक्षा करती है इसलिये······समझ लो!"

शहर भर के काजियों, मुल्लाओं और दारोगाओं ने प्रधान काजी की बुद्धिमानी और नीतिज्ञता को स्वीकार करने के लिये सिर झुका कर उन्हें आदाब किया।

बादशाह सलामत के हुक्म से न्याय की पुकार के लिये लटकाये गये घन्टे की रक्षा के लिये सशस्त्र सिपाही तैनात कर दिये गये। शहनशाह आरामगाह में बेगम नूरेहरम के हाथ से बरफ में दबी 'मय अर्गवानी' और 'मय शीराज़ी' बिल्लौरी प्यालों में पीते हुये अपने न्याय के घन्टे की टंकोर सुनने के लिये प्रतीक्षा करते रहते। दिन बीते, हफ्ते बीते और महीने बीत गये। न्याय के घन्टे ने न्याय के लिये दुहाई न दी। बादशाह सलामत को संतोष होता गया कि उनके राज्य में अन्याय नहीं है।

एक दिन बुधवा धोबी संध्या समय अपने बैल पर घाट से लादी लेकर घर लौटा था। थकावट से चूर होने के कारण वह बैल को खूटे से बांध देने से पहले ही खाट पर बैठ गया। बैठा तो ऊंघ आ गई। बुधवा का बैल अवसर से मिली इस स्वतन्त्रता का लाभ उठाने के लिये जिधर मुंह उठा, चल दिया। बैल घूमता-फिरता एक मंडी में जा पहुँचा। मंडी में उसने एक दूकान के आगे रखी गुड़ की भेली पर मुह मारा। बनिये ने यह अन्याय देख बैल के मालिक को गालियां देकर दो लाठियां बैल की पीठ पर जोर से जमा दीं।

बैल कुछ दूर आगे दौड़ा। किसी रईस के अस्तबल में घोड़े के लिये रखी हरी दूब देख, बैल की जीभ दूब का रस लेने के लिये मचल गई। यह देख रईस के नौकरों ने चाबुकों और कमचियों से बुधवा के बैल का सत्कार कर उसे आगे रास्ता दिखा दिया।

बुधवा का बैल अवसर से पाई स्वतन्त्रता का आनन्द लेता, गलियों और बाजारों की सैर करता चला जा रहा था। जगह-जगह उसकी पीठ पर छड़ियां और लाठियां बरस कर निशान बनते जा रहे थे। बैल चलता-चलता शहनशाह के महल के नीचे जा पहुँचा। बादशाह के आरामगाह की खिड़की से लटकता घन्टा उसे दिखाई दिया। अंधेरे में घन्टा बैल को गुड़ की भेली सा जान पड़ा। वह उस की ओर बढ़ने लगा।

न्याय के घन्टे की रक्षा के लिये तैनात सशस्त्र सिपाही आस-पास बैठे औंघा रहे थे। वे न्याय की दुहाई देने वाले मनुष्यों से घन्टे की रक्षा कर रहे थे। पशुओं से उन्हें कोई आशंका न थी।

बुधवा का बैल गुड़ के लोभ में घन्टे की ओर लपका। उसका मुंह लगने से घन्टा बज उठा। चौकसी के लिये तैनात औंघाते हुये सिपाही आशंकित हुये परन्तु इतने में आरामगाह की खिड़की के नीचे घन्टे की टकोर सुनने के लिये तैनात चोबदार पुकार चुका था—"कौन है? जहांपनाह, साहिबेआलम के हुजूर में इन्साफ की फरियाद करने वाला कौन है? फरियादी को हाजिर किया जाय।" अब बैल को खदेड़ कर भगा देने का अवसर न था।

न्याय-प्रिय शहनशाह शराब के जोश में झूमते हुये दूनी तत्परता से न्याय करने के लिये उठ बैठे। उनके सामने फरियादी की जगह एक बैल पेश किया गया तो बादशाह सलामत को कुछ ताज्जुब हुआ। उन्होंने अपनी आंखें मल कर ध्यान से देखा—बैल तो बैल ही था लेकिन फिर ख्याल आया कि साहिबे-

आलम की सल्तनत के पशु भी तो उनकी प्रजा हैं और उनके साथ भी न्याय होना चाहिये।

शासनशाह ने बैल को हुक्म दिया—"फरियाद करो!"

बैल को चुप देख शहनशाह के मन में विचार आया कि बैल तो बेजुबां है। बेजुबां रियाया की फरियाद समझना उनका अपना फर्ज है। उन्होंने फिर आंखें खोली और गौर से बैल की ओर देखा। बैल के शरीर पर पड़ी लाठियों के चिन्ह बादशाह सलामत को दिखाई दिये। वे बैल की न्याय के लिये दुहाई का कारण समझ गये।

बादशाह सलामत ने शहर कोतवाल (नौकरशाही) को हुक्म दिया—"बैल के मालिक की तलाश करके उसे इन्साफ के लिये माबदौलत के हुजूर में हाजिर किया जाय!"

बादशाह के फरमाबरदार शहर कोतवाल ने मुस्तैदी से बैल के मालिक बुधवा धोबी को तलाश कर बादशाह सलामत के हजूर में फौरन पेश कर दिया।

बादशाह सलामत ने अपराधी बुधवा धोबी को सम्बोधन किया—"तुम्हारे बैल ने माबदौलत के हुजूर में बेरहमी से पीटे जाने की फरियाद की है।"

फिर बादशाह सलामत ने शहर कोतवाल को सम्बोधन किया—"इस बैल की पीठ पर चोटों के जितने निशान हों, गिन कर उतने ही कोड़े बैल के मालिक बुधवा धोबी को शहर के चौक में खड़े करके लगवाये जायें।"

बुधवा धोबी सजा का यह हुक्म सुन कर कांप उठा। उसने जमीन पर सिर रख दुहाई दी—"जहांपनाह, मैं तो अपने बैल को फूलों से पोंछ कर रखता हूं। मैंने उसे नहीं मारा। कोई गवाह कह दे उस ने मुझे बैल को मारते देखा हो!"

अभियुक्त को अपने इन्साफ पर एतराज करने का दुस्साहस करते देख शहनशाह को ताज्जुब हुआ लेकिन इन्साफ का खयाल कर गम खा गये और इर्शाद फरमाया—"ऐ नादान बशर (भोले आदमी), माबदौलत के इन्साफ पर उज्र करने की तुम्हारी जुर्रत से माबदौलत को ताज्जुब है। माबदौलत के इन्साफ पर रियाया का उज्र करना ही सब से बड़ा जुर्म है। जब वालिये-सल्तनत (सरकार) रियाया पर खुद इल्जाम लगाये तो गवाह और सबूत की जरूरत नहीं होती। हमारे कोतवाल ने तुम्हें गिरफ्तार किया है। माबदौलत ने तुम्हें सजा का हुक्म दिया है इसलिये तुम इन्साफ में कसूरवार हो!"

शहर कोतवाल बादशाह का हुक्म पूरा करने के लिये बुधवा धोबी की मुश्कें बांध कर ले गये।

जब साहिबेआलम अपनी आरामगाह पर वापस लौटे तो बेगम नूरेहरम ने उन्हें न्याय की तत्परता के लिये बधाई दी। बादशाह बेगम के हाथ से शराब का नया जाम स्वीकार करते हुये संतोष से बोले—"बेगम, आज दुनिया ने देख लिया कि मावदौलत की अदल में इंसान तो क्या, जानवर के साथ भी इन्साफ किया जाता है।" और शाहनशाह ने न्याय स्थापना के परिश्रम की थकान में और न्याय करने की सफलता के आश्वासन में, शराब का एक और जाम एक घूंट में पी लिया।

स्थायी नशा

सन् १९४२ में 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में भाग लेने के कारण जेल जाना पड़ा था। जेल से छूटने पर दाजू ने परिवार के प्रति उत्तरदायित्व के सम्बन्ध में एक प्रभावशाली व्याख्यान देकर समझाया—"…जो आदमी इस लड़ाई के जमाने में भी नहीं कमा सका, वह दुनिया में कभी कुछ नहीं कर सकेगा !… रुपया तो बरस रहा है। कोई समेटने के लिये झोली भी न पसार सके तो उसे क्या कहें………?"

"कोई मौके को ठुकराता ही जाय तो मौका ही उसके पीछे कहां तक दौड़ेगा ?" दाजू जोर देकर बोले, "तुम्हें देश का काम करने से कोई नहीं रोकता लेकिन देश का काम करने लायक तो हो जाओ !…तुम नकल करते हो बड़े-बड़े लीडरों की ! अरे, उनकी और तुम्हारी बराबरी क्या ? वे लोग सौ-पचास का पेट भर, उन्हें अपने साथ लेकर चल सकते हैं और तुम हो; अपनी ब्याही औरत को ही दूसरों की मोहताज छोड़ कर देश की सेवा करने चले हो !…जो अपने घर का कुछ नहीं बना सकता, वह देश का क्या खाक बनायेगा ?"

और फिर दाजू ने सांत्वना दी—"तुम्हें करने को कहता कौन है ? तुम हमारे साथ तो बने रहो। बस देख-भाल में साथ देते रहो। आलू के परमिट के लिये दरखास्त दे दो। आलू न ढोना चाहो तो परमिट ही बेच डालना। हजार-बारह सौ उसी में बच जायेंगे।"

युद्ध के समय, रुपये की उस बरसात में परमिट-मात्र ले लेने से, इतनी आसानी से हजार-बारह सौ प्रति मास बन जाने की आशा ने यह विश्वास दिया कि उचित रूप से देशभक्ति कर पाने के लिये अर्थात कांग्रेस में कोई अधिकारपूर्ण स्थान पा सकने के लिये हाथ में कुछ रुपया होना ही अच्छा है।

रुपये की आवश्यकता किस काम में नहीं पड़ती ? अगर नेताओं को एक तार ही देना हो अथवा नेताओं से मिलने के लिये लखनऊ जाना पड़ जाय या सभा करने के लिये डौंडी ही पिटवानी हो तब भी रुपये के लिये हाथ पसारना ही पड़ता है। ऐसे समय सभा का हो सकना और न हो सकना, इस कार्य के लिये रुपया दे सकने वाले पर ही निर्भर करता है।

एक बात यह थी कि जितने उत्साह से 'कर या मर!' की भावना से आंदोलन में भाग लेकर हम लोग जेल गये थे, जेल में मिलने वाले समाचार पत्रों से और जेल से छूटने के बाद गांधी जी, नेहरू जी, पंतजी, और मौलाना आजाद आदि नेताओं के वक्तव्य पढ़ने से यही मालूम हुआ कि १९४२ की हमारी क्रांति, 'कांग्रेस के नेताओं का आदेश नहीं थी बल्कि नेताओं के अभाव में अंग्रेज सरकार के उत्तेजना दिलाने पर, देश के गुमराह नौजवानों का अनियंत्रित उत्साह-मात्र था।' अनुत्साहित करने वाले इतने अधिक कारणों से घिर गया कि दाजू के साथ 'रानीखेत' जा कर आलू की परमिट लेकर कुछ कारोबार कर लेना ही उचित समझा।

परमिट पाने के लिये बान पांडे जी की मार्फत होनी थी। उन्होंने सूर्यास्त के पश्चात साढ़े-सात बजे आने को कहा था। कारोबार के नये-नये उत्साह में पांडे जी के यहां ठीक समय पर पहुंच जाने के लिये उत्सुक था परन्तु दाजू मनुष्य के प्रयत्न की अपेक्षा भगवान की पूजा और कृपा में ही अधिक विश्वास रखते हैं। सवा-सात बजे वे अपनी सध्या समय की पूजा अर्थात् पाठ करने के लिये मकान के सामने तख्त पर बैठ गये। मिनट पर मिनट गुजरते जा रहे थे परंतु दाजू का पाठ समाप्त होने में नहीं आ रहा था। पाठ समाप्त किये बिना दाजू का पूजा पर से उठ जाना उतना ही कठिन था जितना कि रानीखेत की पहाड़ी का अपने स्थान से उठ कर लखनऊ पहुंच जाना।

मैं बेचैनी और उतावली में दाजू के मकान के सामने चहल-कदमी करता हुआ उन का पूजापाठ समाप्त होने की प्रतीक्षा कर रहा था। दाजू को पूजा समाप्त करने की कोई जल्दी नहीं जान पड़ती थी। उन्हे अपने मंत्र बल पर इतना विश्वास है कि सम्पूर्ण संसार को उन की पूजा समाप्त होने की प्रतीक्षा करनी ही होगी। सुविधा से पूजा करते-करते आये-गये आदमी से दो-चार आवश्यक बातें कर लेने मे भी दाजू को कोई आपत्ति नहीं होती।

पूजा करते-करते दाजू ने सडक से गुजरते बेचैनसिंह को पुकार कर उस

की जगह !"

उसकी गुर्राहट की उपेक्षा नथिया ने नहीं की। उसने मित्र के गले में पड़ी अपनी बांह मींच कर उसके कुर्ते का गिरेबान झटक कर चुनौती दी—"अबे हरामी, तू कौन होता है मुझे बाप बनाने वाला ? तू है मेरा बाप !"

हरजू ताव में आ गया—"तेरी मां का ..." और मित्र के मुह पर तड़ से थप्पड़ जड़ दिया। उस प्रहार के उत्तर में नथिया ने हरजू की टांग के नीचे हाथ डाल उसे चौड़े पत्थरों के फर्श पर पटक दिया और उसकी बहिन से बलात्कार करने की घोषणा कर घमकाया—"साले .... तू है मेरे बाप की जगह !"

दोनों में गुत्थमगुत्था होने लगी। कोई भी दूसरे को अपना बाप मानने की प्रतिज्ञा को छोड़ने के लिये तैयार नहीं था। पड़ोस की दूकानों से भले-मानुस दौड़ पड़े। भलमनसाहत के नशे के गर्व में यह लोग ठर्रे के नशे से बेमुध हरजू और नथिया की मां-बहनों से अनुचित व्यवहार करने के इरादे की घोषणा ऊंचे स्वर में करते हुये उन्हें एक दूसरे से पृथक करने की चेष्टा करने लगे।

भलेमानुस लोग ललकार रहे थे—"इनकी मां का ...! दोनों हरामियों को थाने पहुँचाओ ! ये वहन ... छः-छः महीने जेल की हवा खा आयें तो इनका दिमाग जरा ठीक हो।"

जेल भेजे जाने की इस धमकी का भी असर नथिया और हरजू के नशे पर न हुआ। नथिया हरजू को और हरजू नथिया को अपना बाप बना लेने की प्रतिज्ञा ऊंचे स्वर में दुहराये ही जा रहे थे।

गली में कोहराम मच गया। दाजू भी उस कोलाहल की उपेक्षा नहीं कर सके। अपनी पूजा में एक अल्प विराम देकर उन्होंने उन दोनों मूर्खों को, उनकी माँ-बहिनों के सम्बन्ध में एक-एक काफी बोझल गाली देकर समझाने का यत्न किया—"दोनों साले नशे में पागल हैं, समझते भी हैं कि क्या बक रहे हैं ?"

दाजू की इस बात से मेरा ध्यान दाजू के मंत्रपाठ और पूजा की ओर चला गया कि वे ही जो कुछ मुंह से उच्चारण कर रहे हैं, उसका अर्थ और प्रयोजन कितना समझ पा रहे हैं ? और सोचा, हरजू और नथिया तो घंटे-डेढ़ घंटे में ठर्रे की अस्थायी झोंक हवा हो जाने पर अपने व्यवहार के लिये

लज्जा अनुभव करने लगेंगे और इस घटना की याद से उन्हें संकोच भी होगा परन्तु दाजू का यह स्थायी नशा ?

परन्तु ऐसी बात तो कोई भला आदमी पूजा और मंत्रपाठ के सम्बन्ध में कह नहीं सकता; कहे भी कैसे ?···नशे के लिये लज्जा और पश्चाताप तो नशा टूटने पर ही अनुभव होता है।

मैं कुछ कह ही कैसे सकता था ? मेरे मन में तो अभी दाजू की सहायता से आलू का परमिट पाने की आशा शेष थी इसीलिये सुबुद्धि ने चुप रह जाने का ही परामर्श दिया।

एक सिगरेट

दमनी ब्राह्मणी है परन्तु छोटी जात की। छोटी जाति इसलिये कि ब्राह्मण होकर भी उसके घर के लोग हल जोतते हैं। कठिन श्रम और धरती के मैल से उनके शरीर कलुषित हो गये हैं। धूल और मैल से नित्य का सम्पर्क होने के कारण इन परिवारों का व्यवहार और भाषा भी मलिन हो गई है। वे मान और आदर खो बैठे हैं। यदि इन ब्राह्मणों को जीवन निर्वाह के लिये कठोर और मैला श्रम न करना पड़ता तो उनकी वंश-परम्परा में व्यवहार और भाषा की पवित्रता भी बनी रहती और उनके सामाजिक सम्मान के अनुकूल उनकी बेटी का नाम दमनी न होकर दमयन्ती होता।

बद्रीनाथ धाम की यात्रा के मार्ग में 'कर्णप्रयाग' और 'रुद्रप्रयाग' के बीच सड़क से पाँच-छः मील हट कर दमनी की ससुराल है, है क्या ……कहिये थी! ब्याह तो उसका तभी हो गया था जब वह ग्यारह-बारह बरस की थी। ब्याह के बाद भी वह डेढ़-दो बरस मायके में ही बनी रही। जब दमनी का दूल्हा बजदत्त (बज्रदत्त), निम्न आर्थिक श्रेणी के दूसरे गढ़वाली नौजवानों की मर्यादा के अनुसार रंगरूट भरती होने के लिये 'लैन्सडाउन' जाने लगा, तो बहू को अपने प्रौढ़ माता-पिता की सहायता के लिये उसके मायके से घर ले आया। एक ही बेटा होने पर माँ-बाप का बूढ़े हो जाना कुछ असाधारण सा लगता है परन्तु बात ऐसी ही थी। बजदत्त से पहले उसके माता-पिता के एक लड़की और फिर छः वर्ष के अन्तर से दूसरी लड़की हुई थी। पहली लड़की ब्याह की उम्र से पहले ही मर गयी। दूसरी लड़की भी जब पूरे आठ बरस की हो गयी तभी भगवान ने नरान्दत (नारायणदत्त) को पुत्र का मुह दिखाया। बजदत्त जब रंगरूट होने लायक पट्ठा हुआ तो उसके माँ-बाप जवानी की पहाड़ी की चोटी लांघ, दूसरी ओर की ढलवान पर काफी उतर चुके थे।

[illegible] में [illegible] और [illegible] बन गया। [illegible] के [illegible] काम में पूछ के कुछ [illegible] और बहू पर बहुत [illegible] था।

दमती की भी ऐसी ही बहू। सास की इस [illegible] पर [illegible] [illegible] ऐसी—आठे [illegible]! ऐसी बहू पाकर [illegible] भी [illegible] भी और [illegible]। [illegible] के [illegible] बहू के लिए [illegible]। सास [illegible] [illegible] बहन [illegible] है। दमती ढोरों के लिये घास, भाई के लिये ईंधन और पानी लाती, घर में गोबर फेरने जाती और इन सब से छुट्टी पाती तो सास की टांगें और कमर भी दबा देती।

दमती की सास के शरीर में ऐसे ही वायु का प्रकोप रहता था। कभी दांत दर्द करने लगते, कभी चेहरे का कोई भाग या आंखें सूज जातीं, कभी पेट में वायु का गोला-सा बन जाता। सास इस के लिये तम्बाकू के धुयें का दम लगा लेने की सलाह देती परन्तु औरत हो कर [illegible], तम्बाकू पिये तो लोग क्या कहेंगे, यह डर भी तो था। वैसे, दर्द का इलाज भी करना था। सास ने दमती को समझाया कि अपने काका (ससुर) की पुरानी, छोटी गुड़गुड़ी के नारियल में बिना पानी डाले चिलम में तम्बाकू और आग रख लाया करे। सास ओबरी (भीतर की अंधेरी कोठरी) में बैठ गुड़गुड़ी से दम लगा लेती। दमती सास के यह सब रहस्य भी ढके हुये थी।

ससुराल आकर दमती के शरीर की उठान खूब उभर आई थी। शरीर की बाढ़ और उभार पूरा हो गया तो उसमें जोबन और छवि आने लगी; जैसे फल का आकार पूरा हो जाने पर उस में रस और रंग आने लगता है। उसके चेहरे पर लुनाई और आंखों में चमक आ गई। बजदत पिछले बरस सिपाहियों की अट्ठाइस दिन की छुट्टी पर आया तो लौटते समय मन ऐंठ-ऐंठ कर रह गया। दमती की चाह उसके मन में ऐसी बस गई थी कि छावनी में लौटने पर पांव हरदम अपने गांव की ओर उठने के लिये मचलते रहते। बजदत ने पलटन में सिगरेट पीना सीख लिया था। लम्बे-लम्बे कश खींच राख झाड़ने के लिये चुटकी बजाकर, वह अपने मुंह से निकले सिगरेट के धुयें में अपनी बहू की कल्पना करने लगता। यह सिगरेट के कश क्या थे, दमती के लिये आहें थीं!

बजदत ने कम्पनी के सिपाहियों से तिकड़म लगा कर अपनी छुट्टी बारी से पहले ही, यानि नौ महीने बाद ही करवा ली। लैंसडाउन से चलते समय इस बार उसने टीन के फूलदार छोटे ट्रंक में बाप के लिये एक जोड़ा पुराने

फौजी बूट, माँ को बंडी के लिये एक टुकड़ा मोटा कपड़ा और दमती के लिये बेने के रेशम की, धूप-छांव रंग की एक खूब चमकदार साड़ी, चांदी के झुमके, सुरमादानी और ऐसी ही कुछ और चीजें भी रख ली। छावनी में सड़क के किनारे परदा खड़ा करके सन्दूक-जैसे कैमरे से फोटो खींचने वाले पंजाबी से बजदत ने चार आने पैसे में अपना एक छोटा-सा फोटो भी बनवा लिया था। उसे तो केवल अट्ठारह दिन घर में रह कर फिर छावनी में लौट आना था। सोचा, बहू फोटो देख-देख कर उसे याद करेगी। बजदत को इस कल्पना से संतोष होता। छावनी में बहू की याद आती थी तो वह सिगरेट से लम्बे-लम्बे कश खींचा करता। सिगरेट के धुएँ से सिर घूम जाता तो बहू के साथ होने की कल्पना करने लगता। उसके मन में था कि घर जायगा तो ऐसे ही कस लगाकर बहू को बाँहों में लेकर प्यार करेगा।

बजदत के छुट्टी पर जल्दी आ जाने से मां-बाप को अच्छा ही लगा था परन्तु जब इस बार लड़के ने पिछले बरस से आधी ही कमाई उनके हाथ में रखी, तो इसका सम्बन्ध वे उसके छुट्टी पर जल्दी आ जाने से नहीं लगा सके। बजदत एक तो इस बार नौ ही महीने की तनख्वाह पाकर आया था दूसरे उसी तनख्वाह में से मां-बाप के लिये कुछ सामान और दमती के लिये साड़ी, चांदी के झुमके और दूसरी चीजें भी ले आया था। सिपाहियों की संगत में कुछ सिगरेट-विगरेट का भी शौक करने लगा था। बजदत के मां-बाप ने अपने हाथ में तो पहले से आधा पैसा पाया और बहू के लिये कीमती साड़ी और गहना आते देखा। उनका माथा ठनका···यह क्या ?· यह बहू तो डाइन है। इसने तो लड़के को बस में कर लिया है।

बजदत छावनी से कुछ नये ढंग भी सीख आया था। दिन भर घूमता-फिरता। खेती-बाड़ी के काम में उसका मन न लगता। बन्दूक चलाने वाले हाथ हल और फावड़े को क्या छूते ? वह घूमता-फिरता पांच मील परे चट्टी (सड़क के पड़ाव) तक चला जाता। वहां से थोड़ी मूंगफली या मिठाई ले आता और चुपके से बहू को दे देता। लिहाज छोड़ कर अपना बिस्तर ऊपर रसोई में लगा लेता। दमती के किसी काम में लगे रहने से उसे अबेर मालूम होती तो पुकार बैठता—अरी ओ। ····· प्यास लगी है। पानी दे जा ! और फिर बहू को लौटने न देता। इतना तो मां-बाप भी देखते थे और मन मार कर चुप रह जाते। कुछ वे नहीं भी देख पाते थे। बजदत आराम से लेट कर

सिगरेट निकाल लेना। दमती को सिगरेट चूल्हे से सुलगा लाने के लिये कहता। दमती सिगरेट सुलगा देती तो वह खूब लम्बा कश खींच, उसे बांहों में दबा लेता और सिगरेट थमी मुट्ठी दमती के मुंह पर रख जिद्द करता—तू भी पी! दमती को पहले तो धुएं से खांसी आई और घबराहट हुई। फिर धीरे-धीरे मजा आने लगा। तमाखू के धुएं से सिर घूम जाता तो दमती आंखें मूंद पति के सीने पर सिर रख लेती। दमती को भी यह सब अच्छा लगता।

वजदत्त के छुट्टी से लौट जाने से पहले ही सास का मन बहू से फट गया था। लड़के के चले जाने पर सास का व्यवहार और भी कड़वा हो गया। बहू भी चिढ़ने लगी—जाने बुढ़िया को क्या हो गया है? सब-कुछ करते धरते भी गाली देती रहती है। दमती भी उपेक्षा करने लगी। सुनकर भी न सुनती। सास का क्रोध और जलन भी बढ़ती गयी। दमती सास से दूर रहने लगी। ईंधन, पानी या घास के लिये जाती तो पहर भर लगा देती। सास घर पर हो तो वह गौ-घर की खाद फेंकने के लिये खेत चली जाती और सास खेत पर हो तो वह घर पर बैठी रहती। दूर जाने का अवसर न हो तो गौ-घर की परछत्ती पर, जाड़ों के लिये जमा की हुई घास पर ही जा लेटती। अब घर और खेती के काम में उसका मन न लगता।

पहले कुछ तो एकलौते बेटे की बहू के लाड़ में और कुछ अपने आराम के ख्याल से सास ने दमती से कहा था—सब तेरा ही है। मैं क्या छाती पर रख कर ले जाऊँगी, तू ही सम्भाल! और घर दमती के हाथों में सौंप दिया था। टीन के दोनों बक्सों की चावियां भी उसे दे दी थीं। सास के चाँदी के तीन-चार गहने भी इन्हीं बक्सों में थे। नाराज हो जाने पर सास ने सब लौटा लिया और बक्सों की चावियाँ भी अपने घाघरे के नाड़े में बांध लीं। यहाँ तक कि रांधने के लिये आटा-चावल भी खुद देने लगी; अपनी मुट्ठियों से नाप कर और वह भी इतना कि सास-ससुर के खा लेने पर बहू का पेट भरने के लिये भी न बचता। जलन में सास गालियाँ देती रहती कि डाइन ने बेटे का मन उसकी तरफ से फेर लिया। जो कमा कर लाया, उसे ही दे गया।......खसम की कमाई छिपा ली और खाली है मेरे सिर!

वजदत्त के दिये झुमके सिर धोते समय बालों में उलझ जाते थे। एक दिन दमती सिर धोने गयी तो झुमके निकाल कर ओबरी के आले में रख गई। लौटने पर सभी जगह ढूंढा पर न मिले। सास से पूछा तो वह गाली देने

लगी—हाय, देखो डाइन को ! अपना गहना खुद छिपा कर मुझे चोरी लगाती है ! दमती आंसू पोंछ कर चुप रह गई। एक दिन उसकी सुरमादानी भी गायब हो गई। बजरन छावनी लौटते समय अपना फोटो बहू को दे गया था। दमती ने फोटो सिगरेट की डिबिया में बचे हुये एक सिगरेट के साथ रख लिया था। सास फोटो भी न चुरा ले, इस डर से दमती ने वह डिबिया गौ-घर की परछत्ती की एक थम्मी में खोंस कर छिपा दी थी।

सास की गालियों की मात्रा बढ़ती जा रही थी और दमती को रसोई के लिये दिया जाने वाला अन्न घटता जा रहा था। इतना कि उसका पेट ही न भर पाता। एक दिन दमती ने देखा कि सास ने आटा और भी घटा दिया। दमती ने सोचा—हाय, मैं क्या खाऊंगी ? सास रसोई से बाहर गयी तो दमती स्वयं ही कठौते से दो-तीन मुट्ठी आटा निकाल कर परात में डालने लगी। सास ने पलट कर देख लिया।

सास पास-पड़ोस के लोगों को सुनाकर दमती को चोर कह कर गालियां देने लगी—जाने इस डाइन का कितना बड़ा पेट है ! राड का······ ।"

सास का क्रोध भड़क उठा। वह बकती ही जा रही थी। दमती गुस्से में परात पटक कर रसोई से निकल गई। उसे जोर को रुलाई आ रही थी। वह गौ-घर की परछत्ती पर जा बैठी। कुछ देर रोती रही। भूख लग रही थी। वह सोच रही थी—वह जाने कब आयेगा ? उसके आने तक तो सास मुझे भूखों मार डालेगी।

सास ने रोटी सेंक ली। ससुर को खाने के लिये पुकारा। बर्तनों की आहट से दमती ने जान लिया कि सास गुस्से में बर्तन उठा कर आप ही मांजने के लिये पिछवाड़े चली गई है। दमती की आंतें भूख से कुड़मुड़ा रही थीं। ऊपर परछत्ती में खोंसी हुई सिगरेट की डिबिया पर उसकी दृष्टि पड़ी। सोचा, सिगरेट ही पी ले। सिगरेट निकाल कर सुलगाने के लिये दबे पांव रसोई में पहुंची।

दमती छिप कर रसोई में गई थी परन्तु सास को आहट मिल गई। उस ने भांपा, राड रूठ कर डराती है और अब चोरी करने आई है। वह बर्तन छोड़ कर दमती की चोरी पकड़ने के लिये दबे पांव ऊपर गई। वह बड़बड़ाती जा रही थी—अभी चुड़ैल के झोंटे में आग लगाये देती हूं।

सास ने रसोई में झांक कर देखा, दमती चूल्हे के सामने बैठी मुट्ठी में

सिगरेट थामे कश खींच रही थी। सास की आंखें चढ़ गई और मुंह खुला रह गया जैसे खुले आकाश से पत्थर आ पड़ा हो। सास होश में आई तो चीख उठी—"अरे देखो तो राँड़ को !···सिगरेट पी रही है !···हाय, यह तो वाजार की रंडी है। हाय रे, तभी तो मेरे लड़के पर जादू कर दिया ! पैसे चुराती है और चट्टी से सिगरेट लाकर पीती है। बाबा रे, यह तो बखरी (बस्ती) के लौंडों को बहकायेगी···!" सास नीचे आंगन में आकर बांहें फैला-फैला कर पड़ोस के लोगों को पुकार-पुकार कर सुनाने लगी।

ससुर रोटी खाकर विश्राम के लिये दीवार के साथ पीठ टिकाये हाथ में गुड़गुड़ी थामे पी रहा था। कोलाहल सुन कर बूढ़ा कश खींचता हुआ ऊपर रसोई में पहुँचा और क्रोध में चिल्ला कर बोला—"हरामजादी, निकल इस घर से ? ब्राह्मण के घर बाजार की रंडी कहां से आ गई ! निकल अभी, नहीं तो अभी दाव से तेरी मुड़िया काटता हूं।"

दोपहर में खेतों से कलेवा करने आये पास-पड़ोस के लोग भी झोपड़ियों (बखरी) में ही थे। वे शोर सुन कर बजदत के द्वार पर इकट्ठे हो गये। स्त्रियां पिछौरी के आंचल होंठों पर रखे चकित खड़ी थीं। सभी बूढ़े-बूढ़ियों ने सहमत होकर कहा—"सिगरेट पीती है ! ब्राह्मण की बेटी बहू क्या, यह तो बाजार की रंडी है ! वह तो सब की जात बिगाड़ देगी ! न बाबा, इनके घर का पानी कौन पियेगा ?"

दमती सिगरेट चूल्हे में फेंक कर सहमी हुई रसोई में दुबकी बैठी थी। सास ऊपर गई और उसे चुटिया से पकड़ कर नीचे आंगन में खींच लाई। डरी हुई दमती आंचल में मुंह छिपाये वैसे ही खिंची चली आ रही थी जैसे बकरी कान से पकड़ ली जाने पर बेबस हो, खिंची चली आती है। सास ने सबके सामने उसे लात मार कर कहा—"निकल जा रंडी, मेरे घर से !"

चिलम ठंडी हो जाने के डर से ससुर गुड़गुड़ी छोड़ नहीं पा रहा था। कश खींचता हुआ वह भी दमती को भारी-भारी गालियां दे घर से निकल जाने को कह रहा था और न निकलने पर मूंड़ काट लेनेकी धमकी दे रहा था।

दमती जगह-जगह से छिदी, मैली-सी घांघरी पहने और वैसी ही पिछौड़ी ओढ़े थी। मार कर निकाल दी जाने पर वह आंचल में मुंह छिपाये खेतों की ओर चल दी। खेतों से परे एक तुन के पेड़ के नीचे खड़ी हो सोचने लगी—कहां जाऊं ? क्या करूँ ? सास-ससुर के पास अब वह न जायगी। संसार

से उसके लिये एक ही जगह थी, एक ही रास्ता था कि छावनी जाकर अपने आदमी से उसके माँ-बाप के अन्याय की शिकायत करे। वह तेज कदमों से चट्टी की ओर चल दी।

दमती तीसरे पहर रुद्रप्रयाग जा पहुँची। दुकानों में पहुँच कर उसने छावनी का रास्ता पूछा। सोलह-सत्रह बरस की खूब जवान, अकेली और परेशान लड़की को छावनी का रास्ता पूछते देख कर चट्टी के दुकानदार हीरामन को स्थिति भांपते देर न लगी। उसने दमती को ढाढस दे कर, पुचकार कर बैठा लिया और परेशानी की हालत में घर से आने और छावनी जाने का कारण पूछने लगा। दमती ने आंचल से आंसू पोंछते-पोंछते, सास-ससुर के अन्याय की और भूख की परेशानी में सिगरेट पी लेने की सच्ची-सच्ची बात कह डाली। फिर बोली—"मेरा आदमी छावनी में है। उसी के पास जाऊंगी।"

हीरामन दमती की सास को गालियां देकर उसे सान्त्वना देने के लिये बोला—"हां हां, और क्या ? अपने मर्द को छोड़ औरत का कौन होता है ? वहीं जाना ! तू थकी-मांदी आई है। ब्राह्मण की लड़की है। कुछ खा और सुस्ता ले। रास्ता बता देंगे। आराम से भीतर बैठ ! अपना ही घर समझ !" उसने दमती को कुछ मूंगफली और मिठाई खाने को दी। एक लोटा जल दे कर बताया, "हम भी ब्राह्मण हैं। तू हमारे लोटे का पानी पी सकती है। घबरा मत !"

दमती को सड़क पर आते-जाते लोगों की नजरों से छिपाये रखने के लिए हीरामन ने भीतर की कोठरी में बैठा दिया। दमती छावनी पहुंचने के लिए उतावली हो रही थी। घन्टे भर बाद ही बोली—"अब जाती हूं। रास्ता बता दो !"

"वाह, ऐसा कहीं हो सकता है ?" हीरामन ने पुचकार कर समझाया, "भूखी कैसे जाने दूं तुझे ? पड़ोस की बहू-बेटी अपनी ही होती है। भात बना-खा कर जाना ! क्या समझती है तू ? सौ कोस का रास्ता है, धीरज से काम ले ! उस तरफ से जाते मुसाफिरों के साथ कर दूंगा तुझे ! तू बेचारी अनजान औरत जात; अकेले कैसे जायगी ?"

हीरामन ने दमती को दाल-चावल और बर्तन दे दिये। भात रांधते-बनाते सांझ का अंधेरा हो गया। दमती के मन में छावनी जाने की उतावली तो थी परन्तु उसने कई दिन बाद तृप्त होकर खाया था और ढाढ़स की बोली सुनी थी।

उसे ऊँघाई आने लगी। कोठरी की जमीन पर ही पड़ कर वह सो गई। कंधे पर ठेस अनुभव कर नींद खुली। देखा, कोठरी के कोने में छोटा-सा दिया टिमटिमा रहा था। हीरामन उसके कंधे पर हाथ रख कर मुस्कराकर बोला—"अब क्या सोती ही रहेगी ?"

दमती उसके हाथ की पहुंच से परे हटकर नींद से बोझिल आखें मलने लगी। उसे परे हटती देख कर हीरामन वहीं जमीन पर बैठ गया और जेब से सिगरेट की डिबिया निकाल, एक सिगरेट उसकी ओर बढ़ा कर बोला—"अच्छा ले एक सिगरेट तो पी !" दमती आँखें मल रही थी, उसने इनकार में सिर हिला दिया।

"तू पीती तो है, ले न !" हीरामन ने आग्रह किया।

"ऊं हूं" दमती फिर सिर हिला कर बोली, "कहाँ पीती हूँ ? वह तो मेरे मर्द ने दिया था। एक पिया तो यह हाल हुआ।···अब मैं छावनी जाती हूं।"

"बड़ी जल्दी है तुझे छावनी जाने की ?" हीरामन उसके समीप सरक कर बोला, "क्या करेगी छावनी जा कर ? वह तो तुझे और मारेगा कि घर से भाग कर क्यों आई ! कहेगा, तूने दुनिया में नाक कटा दी !" हीरामन ने प्यार से दमती के कंधे पर फिर हाथ रख समझाया, "तू मौज कर !······तुझे क्या है ?"

"हट्ट !" दमती एक ओर हट कर उठ खड़ी हुई।

"नहीं मानती तो तू जान !" मुस्कराकर हीरामन बोला, "सुबह मुंह अंधेरे चली जाना। आधी रात में कोई रास्ता चलता है ? रात में सड़क पर सिपाही पहरा देते हैं। जिसे देखते हैं, चोर कह कर पकड़ लेते हैं। सुबह मुंह-अंधेरे उधर के मुसाफिर चलेंगे। तुझे उनके साथ कर दूंगा।···बैठ तो !"

दमती उसके पास नहीं बैठी। हीरामन के आग्रह करने पर उसने उत्तर दिया—"वाह, पराये मर्द के पास कैसे बैठूं ?" और दूर ही खड़ी रही।

हीरामन पल भर सोच कर बोला—"अच्छा, हमसे घबराती है तो तू यहाँ सो जा; हम जाते हैं। सुबह छावनी की तरफ़ मुसाफिर जा रहे हैं। उन से कह आऊँ। तुझे साथ लेते जायेंगे।"

हीरामन पिछवाड़े के किवाड़ खोल निकल गया। दमती फिर जमीन पर लेट कर छावनी जाने की बात सोचने लगी। मन में नयी जगह होने की घबराहट थी परन्तु घर कैसे लौटती ? कुछ देर बाद वह फिर सो गई। आधी रात में हीरामन ने दमती को फिर उठाया और बोला—"बाहर एक ताना-

पहचाना मुसाफिर है। बड़ा भला आदमी है। तू भी ख्याल रखना समझी ! अकेली रास्ता चलती औरतों को पुलिस वाले भगोड़ा कह कर पकड़ लेते हैं। तुझ से कोई पूछे तो अपने को उसी की 'सैणी' (पत्नी) बता देना भला !"

दमती को अच्छा नहीं लगा। "हट्ट" उसने उत्तर दिया—"किसी बैग (और मर्द) को अपना मर्द कैसे कह दूगी मैं ?"

"पागल है तू !" हीरामन ने अनुभवी और अपनेपन के ढग से समझाया—"दूसरे की तुझे कौन बना रहा है ? तू गाँव की रहने वाली है, सड़क पर चलना क्या जाने ? तेरे ही भले की कह रहा हूं। औरत को अकेली रास्ता चलने का सरकारी हुक्म नहीं है। कोई नाम-गाम पूछे तो अपना नाम नन्दा बताइयो और कहना मेरा आदमी साथ है, जो पूछना है, उससे पूछो ! पुलिस वाले बैग (गैर मर्द) के साथ चलती औरत को पकड़ कर थाने मे जाते हैं। पुलिस वाले मारेंगे और खराब करेंगे ! यह तो बड़ा भला ब्राह्मण है। तू उसे अपना भाई समझ !"

दमती को दुकान से अंधेरी सड़क पर लाकर हीरामन बाहर प्रतीक्षा करते आदमी से बोला—"ले भैया, यह हमारे पड़ोस की लड़की है बेचारी। इसे छावनी में ठीक से पूछ कर इसके मर्द को सौंप देना। रास्ते मे इसे कोई तक-लीफ न हो ! ख्याल रखियो ! ब्राह्मण की लड़की और गाय बराबर होती है, समझे !"

दमती अंधेरे-अंधेरे उस आदमी के साथ चलती आ रही थी। कुछ दूर जा कर वह बात करने लगा—"इस बखत, ऐसे अंधेरे मे बड़ी तकलीफ कर रही है तू ? क्या बात है ?" वह कुछ दूसरी-सी बोली बोलता था। दमती ने फिर सास-ससुर के जुल्म, सिगरेट पीने पर मार कर निकाल दी जाने और छावनी मे अपने मर्द के पास जाने की सीधी-सच्ची बातें बता दी। इस आदमी ने भी दमती के सास-ससुर को गाली दे कर उसे ढाढस बंधाया—"वाह, तेरी जैसी भली लड़की के साथ ऐसा करना था उस रांड को ? तुझे तो खाने को दूध-मिठाई और पहनने-ओढ़ने को अच्छा गहना-कपड़ा मिलना चाहिये। तेरी उमर क्या गोबर ढोने और खेत निराने की है ? राम राम ! तेरे घाघरी-पिछौरी कैसे फट रहे हैं ? श्रीनगर के बाजार मे हम तुझे धोती ले देंगे।"

"तू बेचारा क्यों ले देगा ?" दमती ने उस की सहानुभूति का आदर कर उत्तर दिया, "मुझे अभी धोती का क्या करना है ? मेरा मर्द ले देगा। वह मेरे लिये बड़ी अच्छी रेशमी धोती लाया था। मेरी सास ने वह भी छीन ली।"

[illegible] पहुंच गये। वह बड़े बाज़ार में होकर दमती को एक गली में बने बड़े मकान में ले गया। इतना बड़ा और ऊंचा मकान दमती ने पहले नहीं देखा था। आंगन की दीवार से मिला हुआ और आंगन की दीवार से भी [illegible] हुए। दमती सामने [illegible] भरी हुई थी। दीवार के [illegible] बैठ गये। वह आदमी [illegible] आया। "यह [illegible] का पानी ला देता" वह दमती से बोला, "मैं बाज़ार से दाल-भात लिये आता हूं।"

दमती बैठी रही। [illegible] एक गागर जल लाया फिर दूसरी गागर भर लाया। कुछ देर में ईंधन ला कर रख गया। [illegible] भी नौकर आया। एक अंगोछे की पोटली में दाल, चावल, नमक, हल्दी, मिर्च वगैरा लिये था और एक दोने में घी। कागज में लिपटी एक नयी रंगी हुई धोती भी थी। वह बोला—"तू नहा-धोकर नई धोती पहन ले और रसोई बना।"

नहा-धोकर नई धोती पहन कर उस आदमी की बताई रसोई में दमती ने दाल-भात पकाया। एक थाली में उसे देकर स्वयं भी खाया। फिर चटाई पर जा बैठी। खा कर वह आदमी कुछ देर के लिये बाहर चला गया। लौटा तो आंगन के किवाड़ों में सांकल लगा चटाई पर दमती के पास आ बैठा। दमती उठ कर परे हुई तो वह उस के शरीर पर हाथ रख कर बोला—बिगड़ती क्यों है? सुन तो! अच्छा ले, सिगरेट तो पी!"

दमती ने "हट!" कह कर उस का हाथ झटक दिया और वहां से उठने लगी। आदमी ने उस का हाथ पकड़ लिया और हंसी में गाली दे कर मनाने लगा—"पी न! तू पीती तो है।"

दमती अपना हाथ छुड़ा कर दूसरी दीवार के पास चली गयी। "कहां पीती हूं मैं सिगरेट?...मेरे आदमी ने दी थी तो एक पी ली थी।" उस ने बेरुखी से उत्तर दिया।

वह आदमी रास्ता रोक कर सामने खड़ा हो गया और गुस्से में गाली देकर बोला—"तेरी.....इतने दिन से तुझे यों ही खिला रहा हूं? उतार मेरी धोती!"

दमती डरी नहीं, अकड़ कर बोली—"पहले मेरे कपड़े दे तो मैं तेरी धोती अभी फेंके देती हूं। मैंने क्या तुझ से मांगी थी?" वह औरत की जिद

से यों परास्त होने के लिये तैयार न था। गाली देकर उस पर झपटा और अपनी दी हुई धोती जबरन छीनने लगा। दमती धोती को पकड़े अपने कपड़े मांगती हुई लड़ने के लिये तैयार हो गई। धोती जबरदस्ती खींची जाने पर उसने आदमी के हाथों को नोंचा, दांतों से काटा, अपनी कोहनियों से मारा पर बस न चला। धोती का आधे से अधिक भाग आदमी के हाथ में चले जाने पर रोते हुये गिड़गिड़ा कर दया की भीख मांगी लेकिन वह नहीं माना। वह बिगड़ैल औरत को सीधा कर देने पर तुला हुआ था। उसने धोती छीन ली और लज्जा से सिकुड़ती, सिमटती दमती को गाली देकर उस कोठरी के किवाड़ों को बाहर से सांकल लगा कर चला गया।

दमती बैठी रोती रही। कोठरी के घुप्प अंधेरे में दिन का कुछ अनुमान नहीं हो सकता था। रोते-रोते थक गई तो वैसे ही बैठे-बैठे सिसकियां लेती पछताने लगी—क्यों अनजाने परदेश चली आई?... वहां चाहे मर ही जाती! ...क्यों वह मरी सिगरेट पी? थकावट के मारे शरीर निढाल हो रहा था। बैठा न गया तो वैसे ही सकोच से सिकुड़ कर दीवार के सहारे लुढ़क गई और फिर सो गई।

दमती की नींद खुली तो कोठरी के किवाड़ों की झिरियों से दिन की झलक की लकीरें-सी भीतर पड़ रही थीं। वैसे ही लेटी-लेटी वह फिर अपनी भूल पर पछताने लगी। फिर औंघाई आ गई। नींद टूटी तो किवाड़ों की झिरियों से बनने वाली प्रकाश की लकीरें चौड़ी और अधिक उज्जवल हो गई थीं लेकिन किवाड़ नहीं खुले। वह कोठरी की कच्ची जमीन पर बनी प्रकाश की लकीरों की ओर आंखें लगाये पछताती रही। कभी आंसू बहने लगते, कभी सिसकियां आने लगतीं। उसे प्यास लग रही थी। पाखाने-पेशाब के लिये बाहर जाने की जरूरत थी। उठकर किवाड़ों को खटखटाया और पूरी शक्ति से भीतर खींचा पर किवाड़ न खुले। उसने समझ लिया कि वह ऐसे ही मर जायगी। फिर रोने लगी। अब रोकर भी क्या बनना था? वह निर्जीव-सी पड़ी थी। मन में आया कि फांसी लगा कर जान दे दे। धोती कहां थी जो फांसी लगा लेती! खयाल आया कि जब गांव से निकल पेड़ के नीचे खड़ी होकर उसने छावनी जाने की बात सोची थी, तभी पिछौरी से फांसी क्यों न लगा ली? देखते-देखते किवाड़ों की झिरियों से जमीन पर पड़ने वाली प्रकाश की लकीरें धुंधली हो गईं और फिर घटाटोप अंधेरा छा गया। थक कर और

से यों परास्त होने के लिये तैयार न था। गाली देकर उस पर झपटा और अपनी दी हुई धोती जबरन छीनने लगा। दमती धोती को पकड़े अपने कपड़े मांगती हुई लड़ने के लिये तैयार हो गई। धोती जबरदस्ती खींची जाने पर उसने आदमी के हाथों को नोचा, दांतों से काटा, अपनी कोहनियों से मारा पर बस न चला। धोती का आधे से अधिक भाग आदमी के हाथ में चले जाने पर रोते हुये गिड़गिड़ा कर दया की भीख मांगी लेकिन वह नहीं माना। वह बिगड़ैल औरत को सीधा कर देने पर तुला हुआ था। उसने धोती छीन ली और लज्जा में सिकुड़ती, सिमटती दमती को गाली देकर उस कोठरी के किवाड़ों को बाहर से सांकल लगा कर चला गया।

दमती बैठी रोती रही। कोठरी के घुप्प अंधेरे में दिन का कुछ अनुमान नहीं हो सकता था। रोते-रोते थक गई तो वैसे ही बैठे-बैठे सिसकियां लेती पछताने लगी—क्यों अनजाने परदेश चली आई? ...वहां चाहे मर ही जाती! ...क्यों वह मरी सिगरेट पी? थकावट के मारे शरीर निढाल हो रहा था। बैठा न गया तो वैसे ही सकोच में सिकुड़ कर दीवार के सहारे लुढक गई और फिर सो गई।

दमती की नींद खुली तो कोठरी के किवाड़ों की झिरियों से दिन की झलक की लकीरें-सी भीतर पड रही थी। वैसे ही लेटी-लेटी वह फिर अपनी भूल पर पछताने लगी। फिर औंघाई आ गई। नींद टूटी तो किवाड़ों की झिरियों से बनने वाली प्रकाश की लकीरें चौड़ी और अधिक उज्जवल हो गई थी लेकिन किवाड़ नहीं खुले। वह कोठरी की कच्ची जमीन पर बनी प्रकाश की लकीरों की ओर आंखें लगाये पछताती रही। कभी आंसू बहने लगते, कभी सिसकियां आने लगती। उसे प्यास लग रही थी। पाखाने-पेशाब के लिये बाहर जाने की जरूरत थी। उठकर किवाड़ों को खटखटाया और पूरी शक्ति से भीतर खींचा पर किवाड़ न खुले। उसने समझ लिया कि वह ऐसे ही मर जायगी। फिर रोने लगी। अब रोकर भी क्या बनना था? वह निर्जीव-सी पड़ी थी। मन में आया कि फांसी लगा कर जान दे दे। धोती कहां थी जो फांसी लगा लेती! खयाल आया कि जब गांव से निकल पेड़ के नीचे खड़ी होकर उसने छावनी जाने की बात सोची थी, तभी पिछौरी से फांसी क्यों न लगा ली? देखते-देखते किवाड़ों की झिरियों से जमीन पर पड़ने वाली प्रकाश की लकीरें धुंधली हो गईं और फिर घटाटोप अंधेरा छा गया। थक कर और

निराश होकर उसने आहें भरना भी छोड़ दिया और मर जाने की प्रतीक्षा करने लगी। पाखाना-पेशाब न कर सकने की असुविधा और प्यास से उसका सिर चकरा रहा था। कोठरी के अंधेरे में कभी गाँव और कभी सड़क के दृश्य उसे सिर के चारों ओर घूमते दिखाई देने लगते।

किवाड़ों की झिरियों में फिर प्रकाश आने लगा था पर अब उस ओर दमती का ध्यान नहीं गया। वह अध-बेहोश सी हो रही थी। किवाड़ों के खुलने का खटका हुआ तो वह कठिनाई से सिकुड़ कर बैठ पायी। वही आदमी भीतर आया। दमती के कपड़े उसके शरीर पर फेंक कर बोला—"उठ! जा! नहा धो कर कपड़े पहन ले!" कोठरी के किवाड़ खुले छोड़ और आंगन के किवाड़ बाहर से बन्द कर वह फिर चला गया।

करीब डेढ़ घण्टे बाद वह आदमी फिर लौटा तो दमती पानी पी कर, निबट और नहा-धो कर अपने पुराने कपड़े पहने दीवार से पीठ टिकाए, सिर को दोनों हाथों से थामे बैठी थी। उसकी तबीयत कुछ ठिकाने आ चुकी थी। वह आदमी एक अंगोछे में कुछ बांधे और एक लोटे में दूध लिये था। अंगोछा दमती के सामने रख कर बोला—"ले, तेरे लिये पूरी-तरकारी बनवा लाया हूं। कुछ खा ले और यह दूध पी ले।"

"मुझे कुछ नहीं चाहिये।" दमती हाथ जोड़ गिड़गिड़ाई, "तू मुझे घरों में जाने दे!"

"अरी, क्यों होश गँवाती है? हमने तुझे क्या कहा है? तू तो यूँ ही घिघिया रही है।" वह समझाने लगा, "दुकानदार ने तुझे छावनी पहुँचाने को कहा है, [illegible] देंगे। तू कुछ खा पी ले! अकेली जायगी तो भटक जायगी। [illegible] क्या होगा? तू कुछ जानती तो है नहीं। हम पहुँचा देंगे। तू अभी खा पी ले!"

[illegible] आदमी [illegible] कुछ देर बाद लौटा [illegible]

और दूध-मलाई, रबड़ी खाने को मिलेगी।"

दमनी हाथ जोड़ फिर गिड़गिड़ाई—"नहीं, तू मुझ पर दया कर। मुझे यहां से जाने दे। मैं अपनी राह चली जाऊंगी। छावनी पहुंच जाऊं, चाहे गांव लौट जाऊं।"

"अच्छा, तू हम से नाराज हो गई है।" उस आदमी ने समझौते के स्वर में कहा, "तो हमारे साथ न चल। एक दूसरा ब्राह्मण है; तेरी पट्टी का। वह वह आज शाम छावनी जा रहा है, उसी के साथ चली जाना, बस? मैं उसे बुलाये लाता हूं।" वह फिर उठ कर चला। दमती को बाहर से किवाड़ों पर सांकल लगने की आहट फिर सुनाई दी।

दमती घबरा गई। अब की जाने कैसे आदमी से पाला पड़े! उसने आंगन के किवाड़ों को खींच कर आजमाया। वे खुले नहीं। इधर-उधर देखा। आंगन की दीवार उसके सिर से ऊंची थी। बांह उठाने पर भी हाथ दीवार के सिरे तक पहुंचा। आंगन के कोने में बने पाखाने की दीवार उसके सिर के बराबर ही थी। पाखाने में पिछली दीवार की तरफ नीचे झरोखे थे परन्तु बहुत छोटे। वह यहां से भागने को सभी कुछ करने के लिये तैयार थी परन्तु झरोखे बहुत ही छोटे थे। उसे एक उपाय सूझा। उसने पाखाने की दीवार के समीप गागर औंधा कर रख दी और उस छोटी दीवार पर चढ़ गई। इस दीवार से आंगन की दीवार पर चढ़ी और फिर बाहर कूद गई। गली में से तेजी से चली, कुछ ही कदम पर बाजार आ गया। वह रास्ता चलने वालों से छावनी की राह पूछने लगी।

फटे कपड़ों में अकेली परेशान औरत को छावनी की राह पूछते देख लोग इकट्ठे हो गये। आदमियों को इकट्ठे होते देख कर पुलिस का आदमी भी पहुंच गया। दमती को थाने ले जाया गया। दारोगा ने उसका नाम, गांव और श्रीनगर आने का कारण पूछा। दमती ने फिर अपनी सच्ची-सीधी कहानी सुनाकर, सिगरेट पीने के कारण मार कर निकाल दी जाने की बात सुना दी। दारोगा कुछ मुस्कराये, बोले—"तू सिगरेट पीती है?····· ले!" और उन्होंने एक सिगरेट उसकी ओर बढ़ा दी।

"उँ हूं!" दमती ने इन्कार कर दिया, "वह तो मेरे मर्द ने दी थी।"

इस बात की तलाश शुरू हो गई कि दमती को कौन आदमी श्रीनगर लाया है और वह कहां बन्द रही थी। पुलिस ने दमती को बाजार में और

कई गलियों में घुमाया परन्तु वह कुछ पहचान न सकी ।

"मैं तो खुद ही आई हूं, मैं छावनी जाऊंगी ।" वह जिद्द करती रही ।

घर से भागी औरत को अपनी मर्जी से जहां चाहे जाने नहीं दिया जा सकता था । गिरफ्तार औरत को थाने में रखना भी कायदे के खिलाफ था । उसे गारद की रखवाली में तुरन्त पौड़ी की जेल-हवालात में भेज देना चाहिये था परन्तु सिपाही मौजूद नहीं थे और रात होने को थी । सिपाही उसे रुद्र-प्रयाग से लाने वाले बदमाश का पता चलाने के लिये कई मकानों में घुमाते रहे । उसे बार-बार प्यार से सिगरेट और मिठाई दिखाई गई । दमती क्रोध में मुंह फेर लेती । जोर-जब्र करने पर वह हाथापाई के लिये तैयार हो जाती । अगले दिन उसे दो सिपाहियों की रखवाली में पौड़ी पहुंचा दिया गया ।

मजिस्ट्रेट के सामने पेश की जाने पर उसने फिर अपनी सच्ची कहानी सुना कर कहा कि वह घर नहीं लौटेगी । अपने मर्द के पास छावनी जायगी । उसे समझाया गया कि उसे यों भाग कर नहीं जाने दिया जायगा । वह अपने मर्द को ढूंढ नहीं पायेगी । सरकार बजदत को वहीं बुलवा कर, उसे उसके मर्द के हवाले कर देगी । तब तक उसे जेल के हवालात में रहना पड़ेगा ।

दमती बजदत का सिपाही-नम्बर और कम्पनी-नम्बर बता नहीं सकी इसलिये ज्योला पट्टी, कनार गांव के सिपाही बजदत की तलाश करने में कुछ समय लग गया । इस बीच बजदत के बाप ने दो पोस्टकार्डों पर पूरा हाल लिखवा कर लड़के को भेज दिया था कि उसकी बहू बदचलन और आवारा हो गई है । घर से पैसा चुरा कर चट्टी से सिगरेट खरीद कर पीती है । उसने घर का जेवर भी चुरा कर बेच दिया है । पास-पड़ोस में 'लसपिटाई' (कलंक का टीका) हो गई है । अब सड़क पर किसी मुसाफिर के साथ भाग गई है । पत्र में प्रौढ़ पिता ने युवा पुत्र को आश्वासन दिया था—तू जी छोटा मत करना । ऐसी बहू का क्या ? हम बातचीत कर रहे हैं, तू इस बार छुट्टी पर आयेगा तो ब्याह कर देंगे ।

बजदत को जब कचहरी का कागज मिला कि पौड़ी अदालत में आकर, अपनी बहू को पहचान कर उसकी सिपुर्दगी ले ले तो उसे अपने पिता की बात पर पूरा विश्वास हो गया ।

रुद्रप्रयाग में हीरामन ने मनहर पंडित को बताया था कि एक खूब जवान अल्हड़ ब्राह्मणी सास-ससुर से परेशान होकर घर से भाग आई है । उसकी

दुकान पर बैठी है। मनहर ने दमनी को हीरामन से अस्सी रुपये में ख़रीद लिया। उसका ख़याल था कि लड़की को महीना पन्द्रह दिन श्रीनगर में रखेगा। कुछ दिन नज़रबंद रहेगी। इस बीच सौदिया दुनिया का ढंग समझ जायगी तो उसे देश में जाकर आस-पास गाँव में बेच डालेगा। मनहर ने इस तरह अपने किनारे ओर से पार कर दी थी परन्तु श्रीनगर में दमनी की ज़िद के आगे मुँह की खा कर उसे अपनी भूल समझ में आई। उसने समझा कि वह उतावली कर गया। सौदिया उससे बिगड़ बैठी है। अब उसके हाथ से पुलिस में पकड़ेगी। इस प्रकार से समय बरबाद करने से कुछ लाभ न देख, मनहर ने सोचा कि लड़की को श्रीनगर में ही शिवदत्त के हाथ डेढ़-सौ में बेच दे।

दमनी को शान्त करने के लिये उसको कपड़े और पूरी-मिठाई दे कर मनहर शिवदत्त की खोज में गया था। शिवदत्त को घर न पा कर वह लौट रहा था। उसने बाज़ार में दामनी की तरह पुरुषी, भागी हुई औरत के पुलिस द्वारा पकड़ कर थाने ले जाये जाने की ख़बर सुनी। उसका माथा ठनका। अपने अड्डे पर आकर उसने देखा दमनी ग़ायब थी। पाख़ाने की दीवार के पास औंधी गागर पड़ी देख कर वह समझ गया कि दमनी दीवार फाँद कर भाग गई और अब पुलिस के हाथ में है।

मनहर अपने अस्सी रुपये को पानी में बहा देने के लिये तैयार न था। पुलिस का उसे कोई डर नहीं था। उन्हें वह मौक़ा पड़ने पर पटा सकता था। उसे क्रोध आया हीरामन पर। उसने समझा कि यह सौदिया पक्की चालबाज़ है। पुलिस को चकमा देकर फिर हीरामन के पास जायगी और वह इसे फिर बेचेगा। तभी वह पहाड़ी इतने सस्ते दामों मान गया था। दाँत पीस कर उसने मन में कहा—अच्छा बेटा, आवेश में वह बोला। मैं तेरी वह ख़बर लूँगा कि छठी का दूध याद आ जाये! देखूँ, यह औरत जाती कहाँ है? वह अनुभवी आदमी था। दमनी की ज़िद की बात से उसने यह भी सोचा कि अगर वैसी होती तो इतनी हाय-तूबा क्यों करती? फिर भी देखा जाय कि हीरामन के यहाँ लौटती है या अपने आदमी के यहाँ जाती है!

मनहर ने दमनी के पीछे भेज दिये जाने की बात सुनी तो वह भी उस पर नज़र रखने के लिये पीछे पहुँचा। जिस रोज़ बनदत्त और दमनी अदालत के सामने पेश किये गये, मनहर अदालत में मौजूद था। दोनों को एक-दूसरे को पहचानते देख मनहर को कुछ विस्मय हुआ। मामले को अन्त तक देखने

कई गलियों में घुमाया परन्तु वह कुछ पहचान न सकी ।

"मैं तो खुद ही आई हूं, मैं छावनी जाऊंगी ।" वह जिद्द करती रही ।

घर से भागी औरत को अपनी मर्जी से जहां चाहे जाने नहीं दिया जा सकता था । गिरफ्तार औरत को थाने में रखना भी कायदे के खिलाफ था । उसे गारद की रखवाली में तुरन्त पौड़ी की जेल-हवालात में भेज देना चाहिये था परन्तु सिपाही मौजूद नहीं थे और रात होने को थी । सिपाही उसे रुद्र-प्रयाग से लाने वाले बदमाश का पता चलाने के लिये कई मकानों में घुमाते रहे । उसे बार-बार प्यार से सिगरेट और मिठाई दिखाई गई । दमती क्रोध में मुंह फेर लेती । ज़ोर-जब्र करने पर वह हाथापाई के लिये तैयार हो जाती । अगले दिन उसे दो सिपाहियों की रखवाली में पौड़ी पहुंचा दिया गया ।

मजिस्ट्रेट के सामने पेश की जाने पर उसने फिर अपनी सच्ची कहानी सुना कर कहा कि वह घर नहीं लौटेगी । अपने मर्द के पास छावनी जायगी । उसे समझाया गया कि उसे यों भाग कर नहीं जाने दिया जायगा । वह अपने मर्द को ढूंढ नहीं पायेगी । सरकार बजदत को वहीं बुलवा कर, उसे उसके मर्द के हवाले कर देगी । तब तक उसे जेल के हवालात में रहना पड़ेगा ।

दमती बजदत का सिपाही-नम्बर और कम्पनी-नम्बर बता नहीं सकी इसलिये ज्योला पट्टी, कनार गांव के सिपाही बजदत की तलाश करने में कुछ समय लग गया । इस बीच बजदत के बाप ने दो पोस्टकार्डों पर पूरा हाल लिखवा कर लड़के को भेज दिया था कि उसकी बहू बदचलन और आवारा हो गई है । घर से पैसा चुरा कर चट्टी से सिगरेट खरीद कर पीती है । उसने घर का जेवर भी चुरा कर बेच दिया है । पास-पड़ोस में 'लसपिटाई' (कलंक का टीका) हो गई है । अब सड़क पर किसी मुसाफिर के साथ भाग गई है । पत्र में प्रौढ़ पिता ने युवा पुत्र को आश्वासन दिया था—तू जी छोटा मत करना । ऐसी बहू का क्या ? हम बातचीत कर रहे हैं, तू इस बार छुट्टी पर आयेगा तो ब्याह कर देंगे ।

बजदत को जब कचहरी का कागज मिला कि पौड़ी अदालत में आकर, अपनी बहू को पहचान कर उसकी सिपुर्दगी ले ले तो उसे अपने पिता की बात पर पूरा विश्वास हो गया ।

रुद्रप्रयाग में हीरामन ने मनहर पंडित को बताया था कि एक खूब जवान अल्हड़ ब्राह्मणी सास-ससुर से परेशान होकर घर से भाग आई है । उसकी

दुकान पर बैठी है। मनहर ने दमती को हीरामन से अस्सी रुपये में खरीद लिया। उसका ख्याल था कि लड़की को महीना-पन्द्रह दिन श्रीनगर में रखेगा। कुछ दिन तफरीह रहेगी। इस बीच लौंडिया दुनिया का ढंग समझ जायगी तो उसे देस ले जाकर चार-पांच सौ में बेच डालेगा। मनहर ने इस तरह जाने कितनी औरतें पार कर दी थीं परन्तु श्रीनगर में दमती की जिद् के आगे मुंह की खा कर उसे अपनी भूल समझ में आई। उसने समझा कि वह उतावली कर गया। लौंडिया उससे बिगड़ बैठी है। अब उसके हत्थे मुश्किल से चढ़ेगी। इस झंझट में समय बरबाद करने से कुछ लाभ न देख, मनहर ने सोचा कि लड़की को श्रीनगर में ही शिवदत्त के हाथ डेढ़-दो सौ में बेच दे।

दमती को शान्त करने के लिये उसको कपड़े और पूरी-मिठाई दे कर मनहर शिवदत्त की खोज में गया था। शिवदत्त को घर न पा कर वह लौट रहा था। उसने बाजार में छावनी की राह पूछती, भागी हुई औरत के पुलिस द्वारा पकड़ कर थाने ले जाये जाने की खबर सुनी। उसका माथा ठनका। अपने अड्डे पर जाकर उसने देखा दमती गायब थी। पाखाने की दीवार के पास औंधी गागर पड़ी देख कर वह समझ गया कि दमती दीवार फाद कर भाग गई और अब पुलिस के हाथ में है।

मनहर अपने अस्सी रुपये यों पानी में बहा देने के लिये तैयार न था। पुलिस का उसे कोई डर नहीं था। उन्हें वह मौका पड़ने पर पटा सकता था। उसे क्रोध आया हीरामन पर। उसने समझा कि यह लौंडिया पक्की चालबाज है। पुलिस को चकमा देकर फिर हीरामन के पास जायगी और वह इसे फिर बेचेगा। तभी वह कांइया इतने सस्ते दामों मान गया था। दांत पीस कर उसने मन में कहा—अच्छा बेटा, आपस में यह धोखा। मैं तेरी वह खबर लूगा कि छटी का दूध याद आ जाये! देखूं, यह औरत जाती कहा है? वह अनुभवी आदमी था। दमती की जिद् की बात से उसने यह भी सोचा कि अगर वैसी होती तो इतनी हाय-हत्या क्यों करती? फिर भी देखा जाय कि हीरामन के यहा लौटती है या अपने आदमी के यहां जाती है!

मनहर ने दमती के पौड़ी भेज दिये जाने की बात सुनी तो वह भी उस पर नजर रखने के लिये पौड़ी पहुँचा। जिस रोज बजदत्त और दमती अदालत के सामने पेश किये गये, मनहर अदालत में मौजूद था। दोनों को एक-दूसरे को पहचानते देख मनहर को कुछ विस्मय हुआ। मामले को अन्त तक देखने

के लिये वह धैर्य से प्रतीक्षा करता रहा। बजदत ने अदालत में दमती को अपनी बहू तो मान लिया परन्तु जब अदालत ने हुकुम दिया कि औरत बजदत को सौंप दी जाय तो उसने दमती को ले जाने से इनकार कर दिया। उसने कहा कि घर से भागी हुई, बदचलन औरत को वह नहीं ले जायगा।

दमती ने सुना तो एक गहरी सांस ले, दोनों हाथों से सिर थाम बजदत की ओर देखती रह गई। उसका सिर चकरा गया, आँखें मुंद गई और धरती पर बैठ गयी। दमती ने सिर उठा कर देखा, बजदत कहीं दिखाई न दिया।

अब सरकार भी दमती को जेल में जगह देने के लिये तैयार न थी। बजदत की भागी हुई औरत को बजदत की सम्पत्ति मान कर उसे सौंप देना सरकार का काम था। जब बजदत ने स्त्री पर से अपना अधिकार हटा लिया तो सरकार को भी दमती से कोई मतलब नहीं रहा। मजिस्ट्रेट ने दया कर दमती को सुझाया कि अगर वह चाहे तो अपने मर्द से अपना खर्च मांग सकती है। दमती ने इनकार में सिर हिला दिया। दमती को हुकुम हुआ—अब उसे इजाजत है, जहाँ चाहे, चली जाय! दमती की आंखों के आगे अंधेरा था परन्तु उसे अदालत से बाहर निकलना ही पड़ा।

मनहर पंडित यह सब कांड देख रहा था। दमती पथराई हुई आंखों और अनिश्चित कदमों से अदालत से बाहर निकल ही रही थी। उसके सामने प्रश्न था कि अब वह जाय कहां? दमती ने सुना—"कहो, कहां चली गई थी तू?"

दमती ने घूम कर देखा और मनहर को पहचान कर चुप रही।

मनहर आश्वासन के स्वर में बोला—"तू यों ही बुरा मान गई। हम तुझे परेशान थोड़े ही करना चाहते थे। तुझे ढूंढ़ते-ढूंढ़ते यहाँ तक आये। हमने तो तो पहले ही कह दिया था कि अब मायके, सुसराल में तेरे लिये जगह नहीं। तुझे परेशान होने की जरूरत क्या? चल, तेरा अपना घर है!"

दमती ने क्षण भर सोचा और फिर मनहर के साथ-साथ चल दी। मनहर उसे बाजार की एक गली के मकान में ले गया और बैठने के लिये आदर से चटाई दी। दमती दीवार से पीठ सटा कर सिर झुकाये हुए चुपचाप बैठ गई।

"बहुत थक गई है तू! ले, एक सिगरेट तो पी, जरा जी हल्का हो जायगा।" मनहर डिबिया से सिगरेट निकाल दमती के हाथ में थमाते हुए बोला।

दमती सिर झुकाये रही पर सिगरेट थाम ली। उस की आंखों से आंसू टपक पड़े। सोचा, अब किसके दम पर, किसके लिये इनकार करे?

फूल की चोरी

इस वर्ष जिस बंगले में ठहरा हूं, उस के केवल ऊपर के भाग में ही मेरा फैलाव है। इस का यह मतलब नहीं कि मुझे घुटने मोड़ कर गुजारा करना पड़ता है। एक बड़े कमरे में तो मैं केवल मैले हो गये कपड़े ही रखता हूं। दूसरे में ऐसे कपड़े जिन्हें अभी व्यवहार में लाना है। यह बात भी नहीं कि इस पहाड़ी नगर में जगह की कमी न हो, या मकान बेकार पड़े हों; यह केवल मुझे यहां बुलाने वाले मित्रों का सौजन्य है। मकान मुझे सभी तरह से बहुत पसन्द है। सामने दूर तक फैली पहाड़ियों का दृश्य, घने पेड़ों से फूलों से घिरे, सुथरे दिखाई देने वाले मकानों का पड़ोस; भीतर से वे मकान शायद ही सुथरे हों ? फूल खूब हैं क्योंकि इस जलवायु में सुन्दर फूल आसानी से प्रचुर मात्रा में हो जाते हैं। इस बंगले के सामने भी कुछ अच्छे गुलाब, चमेली, डेलिया, ग्लैडियोली और आस्टर के फूल हैं। फूल नीचे जमीन पर हैं। मैं दुमंजिले पर हूं। उन फूलों पर मेरा कोई अधिकार नहीं। उन पर नीचे के किरायेदारों का ही अधिकार है। मैं इन फूलों को देख भर पाता हूं। फूलों का और उपयोग ही क्या है ? हां, एक और भी उपयोग फूलों का है और वही बात कहना चाहता हूं।

नीचे की मंजिल में दो भद्र महिलायें रहती हैं। मुझे इस मकान में दो मास से अधिक बीत गये हैं। कभी एक भी बात कुशल-मंगल की जिज्ञासा या कामना की हम पड़ोसियों में नहीं हुई क्योंकि वे दोनों सम्मानित और सच्चरित्र हैं और मैं भी कम सम्मानित और सच्चरित्र नहीं हूं। इस बीच मुझे दो-तीन बार शीघ्र खराब हो जाने वाले फल और दूसरे खाद्य-पदार्थों की भेंट सहृदय लोगों ने भेजी है। इन भेंटों का अधिकांश मुझे दूर रहने वाले स्थानीय मित्रों में बांट देना पड़ा। अकेले पूरी वस्तु का उपयोग किया नहीं जा सकता था

लेकिन इसी मकान में रहने वाली भद्र महिलाओं को मैंने इन भेंटों का कोई अंश नहीं दिया। गैर पुरुषों से बात करना उन के सम्मान और सच्चरित्रता को शोभा नहीं देता। मैं स्वयं भी इस प्रकार के व्यवहार के लिए कोई संकेत नहीं कर सकता।

कुछ ही दिन पहले अन्य परिवारों की अथवा अपरिचित स्त्रियों से व्यवहार के सम्बन्ध में एक सच्चरित्र व्यक्ति ने यह परामर्श दिया था कि हमें सभी स्त्रियों को अपनी बहन समझ लेना चाहिये। उन से कह दिया था—मुझे दुनिया भर का साला बनने का कोई शौक नहीं! हमारे देश में साला कहलाना गाली है और बहनोई कहलाना आदरसूचक। तभी से इस देश में लड़कियों को जन्मते ही गले में अंगूठा देकर मार दिया जाता था। यों हमारी संस्कृति में स्त्रियों को देवी कहा गया है और उपदेश है कि जहां नारियों की पूजा होती है, वहां देवता रमण करते हैं। सवाल यह है कि किसी स्त्री को बहन बनाये बिना, क्या उस के प्रति शिष्ट व्यवहार कर सकना असम्भव है? खैर………।

सच्चरित्रता निबाहते-निबाहते एक दिन अभद्रता हो ही गई। उस घटना का कारण यह फूल ही थे। मैं सुबह उठ कर बराम्दे में बैठ जाता हूं। दूसरी मंजिल के बराम्दे से दूर तक का दृश्य और नीचे ताजे खिले फूल दिखाई देते रहते हैं। सामने 'सिलवर ओक' के सदाबहार पेड़ों पर गुलाब के छोटे फूलों की बेलें चढ़कर शाखों से लिपट गई हैं। कल ही से गुलाब का एक गुच्छा मेरे बैठने की जगह के ठीक सामने खिल गया है। वह गुच्छा सुबह ओस से भीगा हुआ बहुत ही सुन्दर लग रहा था; जैसे पलने में किलकता हुआ बच्चा।

नीचे की मंजिल में रहने वाली भद्र महिलायें पूजा भी करती हैं। नित्य प्रातः मैं उन्हें कुछ मंत्र या भजन गुनगुनाते हुये, पूजा के लिये अपने हाथ से फूल चुनते देखता हूं। भगवान के प्रति आदर से या भगवान की प्रसन्नता के विचार से बढ़िया से बढ़िया फूल पूजा के नैवेद्य में रखना उचित है। भद्र महिला ने कुछ ताजे फूल चुन कर गुलाब के गुच्छे की ओर हाथ बढ़ाया।

"इसे रहने दीजिये!" सहसा मेरे मुंह से निकल गया। मैं उन फूलों को संतोष की बेखबरी में देख रहा था। सदाचार की सावधानी जागरित नहीं थी।

उन्होंने दृष्टि ऊपर बरामदे की ओर की। भवें सिकुड़ गयीं थीं और त्योरियां चढ़ गयी थीं—"पूजा के लिये हैं!"

"होगा; ······· भगवान कौन बच्चा है जो फूलों से बहलेगा।" कहना ही पड़ा क्योंकि बात शुरू हो गई थी।

भद्र महिला होंठ मिकोड़ अपने सम्मान की रक्षा के लिए मेरी दृष्टि के सामने से हट गई। ख्याल आया, तुम दूसरों के फूलों के सम्बन्ध में बोलने वाले कौन हो? पराई सम्पत्ति को तो मिट्टी समझना चाहिये और एक अपरिचित भद्र युवती से उस की वस्तु के सम्बन्ध में बात करना! खैर, अब तो हो ही चुका था।

बरान्दे में बैठा सुन्दर दृश्य के साथ ही एक और भी चीज देखा करता हूं। इसी समय एक छोटी सी लड़की, लगभग छ-सात वर्ष की, हाथ में छोटा सा छींका लिए, दबे पांव दुबकती हुई आई; बिल्कुल ठीक वैसे ही जैसे गृहणी के रसोई में रहते समय बिल्ली बरतन-भांड़ों के पीछे दुबक-दुबक कर, गृहणी की ओर नजरें लगाये, दबे पांव चलती है। बंगले की फुलवाड़ी में कदम रख कर वह लड़की पहले बेला की घनी झाड़ी के पीछे से गर्दन बढ़ा कर देखती है कि भद्र महिलायें बरान्दे में या दरवाजे से देख तो नहीं रहीं! अवसर देख कर, वह पंजों पर दो कदम लपक कर डेलिया के पौधे के पीछे हो जाती है। इसी तरह वह फुलवाड़ी के दूसरे छोर तक जा पहुंचती है। उस की गतिविधि बहुत पक्के, चतुर चोर की तरह होती है, जो उस के छोटे शरीर और भोले चेहरे पर मनोरंजक जान पड़ती है। वह जानती है कि चोरी करती पकड़ी जाने पर उसे डांट या गालियां मिल सकती हैं। मैं ऊपर बरान्दे से उसे देख कर मुस्कराता रहता हूं। कद छोटा होने के कारण वह मुझे जंगले के ऊपर से देख नहीं पाती।

वह लड़की सम्भवतः इस बंगले के दाईं ओर, बहुत समीप बाजार के दुमंजिले-तिमंजिले मकानों की किसी कोठरी से आती है। इन मकानों की प्रत्येक मंजिल की कोठरियों में कई-कई परिवार भरे हुए हैं। उन मकानों में फूल-फुलवाड़ी का अवसर कहां? लेकिन भगवान की पूजा के लिये फूल तो चाहिये ही! शायद लड़की की मां या बाप नियम से पूजा करते हैं। अपनी पूजा के लिये भगवान ने उन्हें कोई सुविधा नहीं दी है। इस बच्ची को भगवान की पूजा के लिए नित्य चोरी करनी पड़ती है। इस चोरी का पाप अधिक बोझल होगा या पूजा का पुण्य? घट-घट व्यापी भगवान तो अपनी पूजा के लिए इस बच्ची का जोखिम उठाना और चोरी करना दोनों ही देखते हैं। इस बच्ची

की घबराहट और चौकसी देख कर जान पड़ता है कि इस फुलवाड़ी से फूल तोड़ कर ले जाना इसके लिये उतना ही संकटमय है जितना कि हनुमान जी के लिये लंका की अशोक वाटिका में चोरी से छिप कर जाना और सीताजी के सामने राम की अंगूठी फेंक देना था।

भगवान की भक्त-वत्सलता की अनेक कहानियां सुनी है। वैसी घटना देखने का कोई अवसर नहीं हुआ। इस भक्तिन की भावना क्या भगवान नहीं जानते? उन्हीं के चरणों में अर्पण करने के लिये दो फूल पाने का भी अवसर इसे नहीं! भगवान पूजा की आशा तो सबसे रखते हैं परन्तु पूजा के साधन और अवसर किसी-किसी को ही देते हैं। भक्त लोग कहते है कि भगवान हाथी से यदि मन भर की आशा रखते हैं तो चींटी से कण भर पाकर ही तृप्त हो जाते है परन्तु करोड़ों इन्सान तो ऐसे है जो कण भर अर्पण करने का भी अवसर नहीं पा सकते। भगवान यदि भावना से ही प्रसन्न हो जाते है तो बिड़ला जैसे लोग क्या मूर्ख है जो भगवान के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करने के लिए पचास लाख रुपया खर्च करके मन्दिर बनवाते है? क्या उनका भगवान के प्रति ऐसी भक्ति दिखाना मूर्खता ही है? बिड़ला और बिड़ला समाज के लोग यदि इतने ही मूर्ख होते तो इस संसार के शासन की बागडोर उनके हाथ में नहीं, भावना से भगवान का भजन करने वाले साधनहीनों के हाथ में होती।

खैर; इस फूल चुनने वाली लड़की की बात? यह बहुत बेदर्दी से फूल तोड़ती है क्योंकि इसे फुलवाड़ी के वीरान हो जाने की कोई चिन्ता नहीं। फूल चुनने का कायदा यह है कि जिस डाल में तीन फूल हों, एक ले लीजिये। भगवान और घर भौंरों के फूल या बैठने की जगह से दिखाई देने वाले फूल नहीं चुनने चाहिये लेकिन इस लड़की को फुलवाड़ी से कोई ममता नहीं। इसे पूजा के लिये फूल चाहिये। फुलवाड़ी चाहे उजड़ती रहे, भाड़ में जाये। यह भी वैसा ही प्रकार है जैसा [illegible] है। [illegible] और [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

दो-चार थप्पड़ भी लग सकते हैं। मजा यह है कि समाज को उजाड़ने वाले व्यापारी और व्यवसायी को ऐसा कोई भय नहीं क्योंकि समाज की फुलवारी में चोरों को पकड़ने और उनके कान उमेठने का अधिकार इन लोगों ने अपने हाथ में कर लिया है।।

इस लड़की को फूलों की चोरी पकड़ी जाने पर इसके पिटने की आशंका से मुझे दुख होता है इसलिए मैं इसकी चोरी पर हो-हल्ला न मचा कर मूक सहयोग देता हूं। चोरी में इस प्रकार सहयोग देना अनैतिकता है। इस अनैतिकता के लिये मैं लज्जा अनुभव नहीं करता। कुछ ऐसे अनैतिक काम हैं जिनके लिये चुप रहना भद्रता समझ लिया गया है। उदाहरणत सरकार को दिये जाने वाले करों में चोरी कर लेने पर आपको कोई चोर नहीं समझता या आप ऐसे चोरों के विरुद्ध कोई चेतावनी नहीं देते। मैं भी इस लड़की की फूल की चोरी के विरुद्ध चेतावनी की पुकार उठाने के बजाय सहानुभूति से आशंका ही अनुभव करता हूं कि कहीं यह पकड़ी न जाय! इसकी चोरी मेरे लिये मन बहलाव का साधन है परन्तु इसकी चोरी कब तक नहीं पकड़ी जायगी?

ख्याल आया, क्या इसकी फूल की चोरी में मूक सहयोग देना उचित है? चोरी क्या है? आवश्यक पदार्थों को प्राप्त करने का अनुचित ढंग ही चोरी है। आज यह केवल फूल चुराती है। बगले के छोटे बगीचे में पेड़ भी है। अभी उनमें फलों के छोटे-छोटे दाने आ रहे हैं। कुछ दिन बाद यह फल गदरा जायेंगे। उस समय यह लड़की चटनी बनाने के लिए इन फलों को चुरायेगी। आज इसे पूजा के लिये फूलों की आवश्यकता है, कल चटनी के लिये अनारदाने और अमूचे की आवश्यकता होगी। अनारदाना या दो अलूचे पैसे-दो पैसे में बाजार से खरीदने जाने का प्रश्न होगा और यह स्वाभाविक विचार भी होगा कि दो-दो करके जो पैसे बचेंगे, उनसे वह चूड़ियां खरीद सकेगी या एक धोती, जिसकी उसे बहुत जरूरत होगी। जरूर जरूरत होगी, उसका रंग और चेहरा साफ और प्यारा होने पर भी कपड़े मैले और पुराने रहते हैं।

फूल और फल चुराने की आवश्यकता से चोरी के प्रति उसका सकोच दूर हो जायगा। कभी आवश्यकता से पीड़ित होने पर और साहस बढ़ने पर वह कपड़े या जेवरों पर भी हाथ साफ कर सकेगी। उस अवस्था में मैं, दूसरे लोग और शासन व्यवस्था मुस्करा कर इसे माफ नहीं कर देंगे।

इसे हथकड़ी पहन कर न्याय के लिये अदालत में खड़े होना पड़ेगा।

इसके उस भावी दुर्भाग्य का आरंभ आज फूल की चोरी से हो रहा है। भगवान को पूजा से सन्तुष्ट करने के लिए फूल की चोरी से परन्तु तब क्या भगवान यह सोचेंगे कि चोरी के प्रति इसकी प्रवृत्ति किस कारण से, किस अवस्था में हुई थी ? इस बेचारी से और इसके मां-बाप से पूजा की आशा कर भगवान ने इन्हें पूजा के लिए फूल नहीं दिए हैं।......भगवान, तुम भलाई की आशा तो सभी से करते हो परन्तु भले बनने का अवसर कितने कम लोगों को देते हो !

अनुभव की पुस्तक

परिचय प्रायः काम देता है परन्तु कभी पहिचाने न जाने में ही सुविधा हो जाती है। अलमोड़ा से लोहाघाट जा रहा था। वहां सफर के दो ही तरीके हैं, पैदल चलो या घोड़े पर। असील और शकील जानवर सस्ते किराये में मिल गया इसलिये सवारी कर ली थी। कपड़े मैले न जान पड़ें इसलिये सफर में प्रायः खाकी कमीज, पतलून और धूप से बचाव के लिये हैट पहनता हूं।

सड़क पर गनचौकी की दुकानों से एक मील आगे बढ़ गया था। चढ़ाई कड़ी है और बार-बार मोड़ आते हैं। एक मोड़ पर मैं घूमा तो सड़क किनारे घने पांगर की ठंडी छांव दिखाई दी। छांव में ढलती आयु की एक प्रौढ़ा और और उससे हाथ भर परे उसी आयु का एक मर्द भी जमीन पर ही बैठे दिखाई दिये। जान पड़ता था, दोनों राह चलते-चलते ठंडी छांव देख कर विश्राम के लिये बैठ गये हैं और बतिया रहे हैं।

मेरी सवारी के घोड़े की टाप सुन कर प्रौढ़ा ने आंखों को धूप से बचाने के लिये हाथ से भवों पर छांव कर मेरी ओर देखा और जैसे पहचान कर तुरन्त उठ खड़ी हुई। जमीन पर ही बैठ जाने से उसके लहंगे पर सूखी पत्तियां और घास चिपक गई थीं, उन्हें झाड़ कर सड़क पर आगे बढ़ आई। उससे दो कदम पीछे-पीछे उसके समीप बैठा मर्द भी था। इन लोगों को अपनी ओर बढ़ते देख कर घोड़ा रोक लिया।

"जंट धीब छौ महाराज (क्या महाराज मजिस्ट्रेट साहब हैं ?) ?" बुढ़िया ने दोनों हाथ नमस्कार के लिये उठा लिये।

"ऊं हूं" सिर हिलाकर मैंने इन्कार किया और अलमोड़ियों की पहाड़ी बोली में पूछा, "क्यों ? क्या जंट साहिब आने वाले हैं ?"

बुढ़िया ने एक लम्बा सांस छोड़ा मानों सिर पर आ पहुंची विपदा टल

गई हो और उसने जंट साहिब से बात करने के लिये फेफड़ों में संचय किये साहस को अभी अनावश्यक बोझ समझ कर उससे छुट्टी पा ली हो। प्रौढ़ा ने घूम कर सान्त्वना से अपने साथी की ओर देखा और दोनों हाथ शिथिलता से अपनी कमर पर टिका कर अपनी भाषा में मुझे सम्बोधन किया—"तो आप फिर कौन हैं ?···हैं तो कोई बड़े ही आदमी !"

"यह तो शहर के बड़े वकील होंगे !" मेरे कुछ उत्तर दे सकने से पहिले ही उसके साथी प्रौढ़ ने अपना अनुमान प्रकट कर दिया।

"अच्छा !" प्रौढ़ा ने ठोढ़ी पर उंगुली रख, फिर घूम कर अपने साथी की ओर देखा और बोली, "तो फिर ऐसे बड़े आदमी ही तो मुसीबत में कुछ मदद कर सकते हैं···क्यों भाई ?···नहीं क्या ?"

"हां, और क्या !" उसके साथी ने विज्ञता से समर्थन किया।

"क्यों, क्या हो गया ?" मैंने सहानुभूति से पूछा।

"कुछ नहीं हो गया महाराज !" गहरी सांस लेकर कुछ न छिपाने के भाव से दोनों हाथ पसार कर प्रौढ़ा ने उत्तर दिया, "होना क्या था ?···कुछ भी नहीं हो गया और फिर हो ही गया समझो !···अरे, यही जो होता रहता है।···होता तो रहता ही है। लोग तो बात का बतंगड़ बना देते हैं। अब क्या है ?···वैसे हुआ तो कुछ भी नहीं, पागलपन है और क्या !"

"क्यों, क्या परेशानी है ?" प्रौढ़ा के संकोच और झिझक के कारण कौतूहल से मैंने अपना प्रश्न दोहराया।

"अरे महाराज, परेशानी क्या ?" प्रौढ़ा ने भारी उत्तरदायित्व से उत्तर दिया, "परेशानी की बात क्या थी ? पर परेशानी हो ही गई न ?···बात तो कुछ भी नहीं थी, पर बात बन ही गई ! मोती ढोलिया की बहू है न, उसे बहादुर ढोलिया अपने यहां ले गया। इतनी सी बात थी। उसकी रपट हो गई। अब कटेगी न सारे गांव की नाक ! ······फजीहत के सिवाय क्या होगा ? झगड़े में सब लोग बंधे-बंधे फिरेंगे।"

दोनों हाथ उठा कर प्रौढ़ा ने समझाया—"बात तो सरकार इतनी सी ही है पर यह काम क्या इस तरह होते हैं ? महाराज, होता तो यही है···कहां नहीं होता ? राजमहल से लेकर झोंपड़ी तक में यही होता है परन्तु महाराज सब बातों का एक ढंग तो होना चाहिये न ! ······सभी यह करते हैं।···किसने नहीं किया ?······क्या अपने वक्त में हमने नहीं किया या तुमने नहीं किया ?

पर एक ढंग होता है न !" प्रौढ़ा विश्वास से मेरी आंखों में देखती हुई कहती गई, "महाराज, मर्द का क्या है ? वह तो भौंरा है, भौंरा उड़ता ही फिरता है। औरत ही है जो फूल की तरह खुली-खिली बैठी रहती है और उसे बुलाती है। महाराज, भौंरा खुला-खिला फूल देखेगा तो आयेगा ही। उसका क्या बस ? यह ढंग तो औरत को आना चाहिये कि कैसे और क्या करना है ! महाराज, इतनी उमर हो गई, क्या नहीं किया ? ·· "क्या नहीं देखा ? पर यह ढंग होता है औरत का कि सब हो जाय और किसी को कानों-कान खबर भी न हो !

"अब देखो न इन लोगों का फूहड़पन ! ·· गांव भर की फजीहत होगी कि नहीं ? आदमी कोई जानवर तो है नहीं कि सींग दिखा कर या गुर्रा कर डरा देगा ? आदमी को तो आदमी के लिये जगह छोड़कर चलना पड़ता है न महाराज ! ·· अब देखो, एक की हेंकड़ी और फूहड़पन और सब की फजीहत ! देखा, उस मोती ढोलिया का पागलपन ! · पागलपन नहीं तो और क्या है ? · लड़काई की उमर है न ? भले आदमी, तुझे बावड़ी का पानी मीठा लगता है तो अजली भर-भर कर ढग से पानी पी कि बावड़ी को ही पल्ले में बांध कर ले जायेगा ? उस मे न बावड़ी की शोभा, न तेरी अपनी !"

प्रौढ़ा दोनों हाथों से माथा ठोंक कर निराशा से बोली—"क्या कहता महाराज, कुछ कहते नहीं बनता और कहे बिना भी नहीं बनता। गाव भर की बात है न !" प्रौढ़ा ने फिर गहरी सास ली, "पागलपन है और क्या ? पर जो पागलपन करे उसे तो पागल समझ कर छोड देना ही ठीक है। आज नहीं तो कल ठोकर खाकर समझेगा ! · पर जंट साहिब को रपट मिली है तो वह गांव की फजीहत करेंगे ही ! यही तो उनका काम है। अफसर तो मौका ढूंढते हैं। इसी के लिये शहर से चल कर इतनी दूर आयेंगे। महाराज, सरकारी नौकर तो मक्खी है, मक्खी ! गंदगी को ढूढ कर उसी पर बैठता है। मक्खी को गन्दगी न मिले तो मर जाये बेचारी ! यही बात महाराज सरकारी अफसर की समझना, नहीं तो भले आदमी का यह ढंग थोड़े ही है ! भला तो वह है कि दूसरे का बदन उघड़ता देखे तो अपने पल्ले से ढाक दे और क्या ? पर अफसर तो उगली फंसाने के लिये छेद ढूंढते हैं। कोई उन्हें खुद ही छेद दिखाये तो ···!"

प्रौढ़ा की बात से आरम्भ में हंसी की एक गुदगुदी मन में उठी थी। तब

अपना कौतूहल पूरा कर सकने के लिये होंठ दबा कर अफसराना गम्भीरता से हंसी को छिपा लिया था। उसकी बात पूरी होने पर अपने दिल में उठी हंसी की गुदगुदी के प्रति लज्जा और ग्लानि अनुभव होने लगी। प्रौढ़ा ने भलमन-साहत की कसौटी ही ऐसी रख दी थी कि किसी की लज्जा और असुविधा पर हंसने संकोच हुआ।

प्रौढ़ा के प्रति सहानुभूति प्रकटकर, घोड़े को ऐड़ लगाकर आगे बढ़ गया और सोचने लगा—समाज शास्त्रियों ने लिखा है कि 'सरकार एक अनिवार्य व्याधि है (Government is a neccessary evil)। इस सत्य को इस प्रौढ़ा से अधिक कौन 'समाजवादी' या 'अराजवादी (Anarchist)' अनुभव करेगा ?... समाजवादी और अराजवादी केवल छपी हुई पुस्तकें पढ़ते हैं और यह प्रौढ़ा अनुभव की पुस्तक......!

पांव तले की डाल

ब्रजनन्दन लखनऊ से वकालत पास करके अपने जिले में प्रेक्टिस करने लगा था। पिता की जमी-जमाई प्रेक्टिस थी। नन्दन ने उसे सम्भाल लिया। वह लखनऊ जाता तो निश्चित रूप से पुराने सहपाठी डाक्टर बिहारीलाल माथुर के यहाँ ही ठहरता। युनिवर्सिटी में सहपाठी तो वे केवल दो ही वर्ष रहे थे लेकिन लखनऊ में दोनों अलग-अलग अर्थात् बिहारी डाक्टरी के कालेज में था और ब्रजनन्दन युनिवर्सिटी में वकालत की पढ़ाई कर रहा था तब भी दोनों की गहरी जमती थी। अब भी दोनों मिलते तो वही 'अबे-तबे' और 'तू-तड़ाक' से बात होती। लड़कपन में किये अनेक सुकर्मों और कुकर्मों को याद कर खूब जोर से 'हो-हो' कर हँसते। इस बीच घट गयी कोई और घटना या बिनोद की रहस्यपूर्ण बात याद आ जाती तो वह भी आपस में सुना डालते। पर्दा या संकोच उन दोनों के बीच अभी तक नहीं आया था।

उस बार ब्रजनन्दन अपने शहर के मित्र और बड़े ठेकेदार मुवक्किल नित्तन बाबू के अदालती काम से लखनऊ गया तो होटल में ठहरा। नित्तन से कुछ दिन पहले ही बात पक्की हो चुकी थी—अब की रहेगी! नित्तन ने ब्रजनन्दन का हाथ दबा कर विश्वास दिलाया था।

नित्तन से ब्रजनन्दन की मित्रता पिछले ही बरस नैनीताल की ब्रिज पार्टियों में हुई थी। एक ही जिले के होकर भी वे पुराने परिचित और सह-पाठी नहीं थे। नित्तन की जिले के देहात में जमींदारी है। वह इलाहाबाद में पढ़ा था। नित्तन ने ब्रजनन्दन के लिये होटल में पहले से ही एक कमरा ठीक कर लिया था। वह कमरा होटल के दाहिने पक्ष में, दूसरी मंजिल पर एक ओर था। दूसरे मुसाफिरों के इधर आने-जाने और दखल देने की सम्भावना नहीं थी।

ब्रजनन्दन संध्या समय बाजार से लौटा तो सीढ़ियाँ चढ़ते समय चाल में उचक-सी थी। उमंग और उत्साह उमड़ कर उसके होठों से सीटी के रूप में निकल रहे थे। वह कोई लय गुनगुना रहा था। दरवाजे के सामने पहुंचने से पहिले ही हाथों ने पतलून की जेब से ताले की चाबी निकाल ली। कमरा खोल कर बाजार से खरीदे सामान का बंडल बगल में दबाये ही उसने बटन दबा, बिजली जला कर कलाई की घड़ी पर नजर डाली। अपनी समय पाबन्दी की तारीफ में उसके मुंह से निकल गया—'साढ़े आठ !···राइट ! बिहारी ने साढ़े आठ तक पहुंचने के लिए कहा था।'

'खट खट !' दरवाजे पर लटके हुए भारी पर्दे के पीछे से किवाड़ों पर उंगली की ठोकर की धीमी आहट सुनायी दी।

"ओ गुड ! जस्ट इन टाइम ! कम इन (वाह, कैसे ठीक टाइम पर आये) डाक्टर !" ब्रजनन्दन ने आल्हाद से पुकारा और बगल में दबा बंडल पलंगपोश से ढंके बिस्तर पर पटक वह प्रत्याशित मित्र से लिपट जाने के लिये दरवाजे की ओर लपका।

पर्दे के पीछे से प्रकट हुआ होटल का बैरा। ब्रजनन्दन ठिठक गया और प्रश्नात्मक दृष्टि से बैरे की ओर देखा।

बैरे ने साहब की झेंप को एक हल्के सलाम से ढक कर, हाथ में थमी बांस की टोकरी से एक मोहर बन्द बोतल निकाली और कोने की मेज पर रख दी। बोतल की रसीद को बचे हुये दामों के नीचे दबा दिया।

"हुजूर, कुछ और आयगा ?" बैरे ने हुक्म माँगा।

"हूं" विचार के लिए ब्रजनन्दन ने होंठ काटा, "हां, सोडा गिलास···दो गिलास और दो सोडा।" आंख झपक ब्रजनन्दन ने कुछ सोचा और प्रश्न किया, "हमारे लिये किसी साहब ने फोन किया था ?"

"हुजूर, अभी तक तो कोई फोन नही आया।"

"फोन आये तो खबर देना। अभी दो सोडा लाओ !"

"हुजूर, खाना किस वक्त लेंगे ?"

"हम बता देंगे। तुम जरा नजदीक रहना।"

"हुजूर, बहुत अच्छा ! हुजूर घन्टी बजायेंगे तो मैं फौरन सलाम करूंगा।"

बैरा सलाम कर बाहर चला गया तो ब्रजनन्दन ने मेज पर से बोतल उठाकर उस का लेबल देखा और होंठ सिकोड़ लिये। बोतल को मेज पर रख दिया।

वह पलग पर पड़े बंडल की ओर घूमा । बडल मे से एक खूब उजली बोतल निकालकर इस बोतल के लेबल को शौक से देखा और पहली बोतल के समीप ही मेज पर टिका दिया । बण्डल की शेष चीजों को वह बायीं दीवार के साथ खड़ी आलमारी मे सहेजने लगा । आलमारी के पल्ले मूंदते-मूदते ठिठका और पल्ले फिर खोलकर सामान मे से चमड़े के केस मे बन्द पिस्तौल निकाल लिया और आलमारी को बन्द कर दिया ।

ब्रजनन्दन ने बिजली की बत्ती के नीचे आ, मुख से धीमे सीटी देते हुए केस मे से पिस्तौल निकाला और ध्यान से देखने के लिए ऊपर उठाया । उसी समय बाहर बरामदे मे दरवाजे के सामने कदमो की आहट हुयी ।

"यस ?" पिस्तौल थामे हाथ को नीचे कर ब्रजनन्दत ने पूछा, "कौन ?"

"कौन ?" उत्तर मे प्रश्न को दोहाकार पद को झटके से हटाते हुये, अचकन-पायजामा पहने डाक्टर बिहारी मुस्कराता हुआ भीतर आ गया, "हम हैं तुम्हारे ताऊ !" डाक्टर ने उत्तर दिया, "साले, पहचानता नही !" पूछता है, कौन ?"

ब्रजनन्दन पिस्तौल पलग पर पटक कर बिहारी से लिपट गया और फिर क्रोध दिखाया—"बड़ा मिजाज हो गया है साले !" बड़ा भारी डाक्टर बन गया है ! एक शाम के लिए हम लखनऊ आये हैं और जनाब फर्माते हैं, हमारा डिनर के लिये प्रीवियस (पहले से) अपाइटमेट है !"

बिहारी ने कमर अकडा कर, दोनो हाथ अचकन की जेबो मे धसाते हुए जवाब दिया—"साले, मिजाज हो गया है तुम्हारा !" होटल मे ठहरते है । "इतने बड़े साहब बन गये ! घर पर क्यों नही आये ?" क्रोध प्रकट करने के लिये डाक्टर ने त्योरिया चढ़ा कर पूछा ।

"निरे पोगे हो तुम ! फोन पर तुमसे से कहा तो था, खास बात है !" ब्रजनन्दन ने मुस्कराकर डाक्टर का हाथ अपने हाथो में दबा लिया ।

"ऐसी कौन बात है जो होटल मे होगी; घर पर नही हो सकती ?" डाक्टर ने सन्देह प्रकट किया ।

"अबे बतायेंगे, उतावले क्यो हो रहे हो ! सांस लो ! बैठो तो !" उसने डाक्टर को दोनो बाहो से पकडकर दीवार के साथ लगी सोफा कुर्सी पर बैठा दिया ।

"हूं !...दो-दो ?" मेज की ओर दृष्टि जाने पर डाक्टर ने बोतलों की ओर संकेत कर अत्यन्त विस्मय प्रकट किया, "यह क्या हरकते हैं बेटा ?...यह क्या तैयारियां हैं ?"

दूसरी हल्की कुर्सी डाक्टर के सामने खींच कर उस पर बैठते हुए ब्रजनन्दन ने उत्तर दिया—"अरे कुछ नहीं। कचहरी से लौट कर जब तुम्हें फोन किया था तो बाहर जाने से पहले बैरे को एक बोतल लाकर रखने के लिये कह गया था। नित्तन के साथ यह पिस्तौल खरीदने गया था" ब्रजनन्दन ने बिस्तर पर झुक पिस्तौल उठाकर डाक्टर के सामने कर दिया और कहता गया, "उस से कहा, तुम्हारे यहां लखनऊ आये हैं एक 'स्काच' दिलवाओ। हमारे यहां तो भैया यह सब सुपना है, एक लेते जांय। भैया, उस का तो बहुत रसूख है। साले ने झट दिलादी। अब तुम्हारे लिये दोनों हाजिर हैं।"

"साले, तुम नित्तन के साथ स्काच ढूंढ़ने के लिये बाजार घूम सकते थे; हमारे यहां नहीं आ सकते थे ?...हटो, हम तुम से बात करना नहीं मांगता। कमबख्त, हम तो तेरे लिये दावत छोड़ कर आये हैं। उस बेचारे ने सात दिन पहले से कह रक्खा था। सौ बहाने कर, एक अर्जेण्ट केस बता, बस एक पेग लेकर उठ आया हूं और तुम्हारे यह मिजाज हैं कि लखनऊ के बाजारों में घूमो और हमारे वहां आकर सलाम न करो ! हटो, हम अभी जाते हैं" डाक्टर ने असंतोष प्रकट करने के लिये उठने की तैयारी में कुर्सी की बाहों पर हाथ रखे।

"नहीं नहीं, यार !" ब्रजनन्दन ने डाक्टर को मनाने के लिए उसके घुटनों पर हाथ टेक लिये, "मेरी भी तो सुन ! जानता है, ग्यारह बजे तो गाड़ी पहुँचती है। हजामत-वजामत सब गाड़ी में की। यहां बिस्तर पटक कर कपड़े बदले तब कचहरी पहुँचा। उन सीनियर वकील को सब मामला समझाया। तीन बजे केस शुरू हुआ। पाँच बजे लौटते ही पहले तुझे फोन किया; तेरी कसम ! नित्तन से मिलना तो जरूरी था। उस से चेक जो लेना था और यह पिस्तौल खरीदना था।" ब्रजनन्दन ने पिस्तौल डाक्टर के हाथ में दे दिया, "कैसा है ?"

"अरे हम क्या जानें पिस्तौल !" डाक्टर ने पिस्तौल को हाथ में तान कर जवाब दिया, "गोली तो नहीं है इस में ?"

"नहीं, गोली नहीं है। अलग रखी हैं। चलाना जानते हो ?"

"ऊँ हूं" डाक्टर ने पिस्तौल को बिस्तर पर फेंक दिया।

"इस के लाइसेंस की तारीख ही खतम हुई जा रही थी। दो-तीन जरूरी दवाइयां भी लेनी थीं। हमारे देहात में मिलता ही क्या है !...बस तू यह समझ कि पांच मिनिट के लिये बहन से भी मिलने नहीं जा सका। तुझे मैंने लिखा तो था, उस ने बनारस से एम० ए० पास किया है। उसे यहां लड़कियों के कालिज में जगह मिल गयी है और रहने के लिये उसे वही कमरा मिल गया है। सुबह छः की गाड़ी से लौट न जाऊं तो वहां सेशन में दो बजे कैसे हाजिर हो सकूंगा ? एक कत्ल का मामला लगा हुआ है। कचहरी से फुर्सत मिलते ही पहले तुझे ही फोन किया ...."

"तू घर आ जाता !" बिहारी ने फिर विरोध किया, "फुर्सत में रात भर जमती।.... यहां पैसा बरबाद करने से फायदा ?"

"यही तो तू नहीं समझता। मुवक्किल का काम, मुवक्किल का खर्च ! यह तो नित्तन का निमंत्रण है।" बिहारी का हाथ अपने हाथों में दबाते हुए नन्दन बोला, "एक बात और है जो घर पर नहीं हो सकती।"

"हूं" दोनों बाहें सीने पर समेटते हुए डाक्टर ने अनुमान प्रकट किया, "तमाशबीनी ?"

"अब समझे बेटा !" गर्दन टेढ़ी कर ब्रजनन्दन ने स्वीकार किया, "इस में भी तो कभी-कभी चेंज होना चाहिये !"

"अभी यह हरकतें जारी हैं ?...कुछ खयाल करो ! लड़के के बाप हो गये हो !" चेंज का शौक चर्राया है। साले, यहां होटल में बाजारू औरत से बीमारी समेट ले फिर आना मेरे पास कि डाक्टर इंजेक्शन लगा दे।.... साले, कभी इलाज नहीं करूंगा तेरा !"

"मुंशी जी, अभी कुछ रोज दुनिया देखो !...बड़े लखनौआ बनते हैं। अबे जो बाजार में टके-टके सेर बिक रही है, उसका क्या शौक ?"

"तो !" डाक्टर ने भवें सिकोड़ प्रश्न किया, "आप के लिये बाजार से नहीं तो आसमान से हूर नाजिल होगी ?"

"अमां हटो !" ब्रजनन्दन हाथ से मक्खियां-सी उड़ाते हुए बोला, "क्या पुगदों की-सी बातें करते हो ! बना है डाक्टर ! दुनिया में क्या नहीं होता ?"

"अच्छा !" भांपने के ढंग से सिर हिलाते हुये डाक्टर ने पूछा, "तो कोई पुरानी आशनाई है ? बेटा, सिक्रेट अकाउन्ट घर में रखते हो, यहां लखनऊ में करेन्ट अकाउन्ट खोल रखा है ?"

"अजी हटाओ, यह इश्क की सिर-दर्दी बन्दा नहीं पालता कि मजनू बने फिर रहे हैं।"

"मियाँ चुगद बन रहे हो तुम!" अपने ऊपर डाला गया लांछन लौटाने के लिये डाक्टर बोला, "जो तुम्हारे लिये यहां आ जायेगी, वह बाजारू न हुई तो क्या होगी?"

"बत्त! गधा है बिलकुल···।" किवाड़ों पर उंगली की आवाज सुनकर ब्रजनन्दन रुक गया और पर्दे की ओर दृष्टि कर उसने गम्भीर स्वर में पूछा, "कौन?"

बैरा एक किश्ती में सोडे की बोतलें और गिलास लिये भीतर आया। बिना कुछ बोले बैरे ने सामान एक छोटी मेज पर टिका मेज दोनों के बीच में रख दी। जेब से बोतल खोलने की चाबी निकाल उसने बोतलों के समीप रख ब्रजनन्दन को सम्बोधन किया—"हुजूर, कोई प्लेट हाजिर करूँ?"

"क्या है?"

"हुजूर कबाब, एगफ्राई, आमलेट, सलाद जो कहें; खाना भी तैयार है।"

ब्रजनन्दन ने अंग्रेजी में पूछा—"तुम क्या पसन्द करोगे? मैंने तो खाना दोपहर बाद बेवक्त खाया है।"

"कुछ भी, सलाद ही मंगवा लो!"

"दो प्लेट कबाब, एक आमलेट और एक सलाद।" ब्रजनन्दन ने बैरे को हुक्म दिया। बैरे के चले जाने के बाद उसने डाक्टर से पूछा, "स्काच खोलूं या यह दूसरी?"

"क्या फरक पड़ता है।" डाक्टर ने हाथ फैला कर उपेक्षा प्रकट की, "फरक तो पहले ही पेग में मालूम होता है। जहां कुछ चढ़ी तो इतनी तमीज ही कहाँ रह जाती है! एक पेग चौधरी के यहां से पी आया हूं। भला आदमी माना ही नहीं।······अब जो हो। रंगे कपड़े पर रंग का क्या पता चलता है?" जो तुम चाहो!

बेटा आज बहुत रंग मेंआ रहे हो, बात क्या है?"

"स्काच खोलूं!"

"क्या फायदा!" डाक्टर ने फिर उपेक्षा दिखायी, "रख ले, मुश्किल से मिलती है। कभी किसी जज-वज को पार्टी देनी होगी तो काम आयेगी। मैं दूसरी चीज ले चुका हूं। कहते हैं, दो चीजें मिल जाने से कभी गड़बड़ भी हो जाती है।"

"आलराइट" व्रजनन्दन ने दूसरी बोतल उठा कर सील-मोहर तोड़ कर बोतल खोल डाली। दो गिलासों में दो-दो उँगली की ऊँचाई तक ह्विस्की डाल उस में सोडा छोड़ दिया। एक गिलास डाक्टर को थमा कर दूसरा स्वयं ऊंचा उठाते हुये बोला—"बेस्ट लक! (शुभ हो)!"

"तैयारी तो बेटा बैड लक (अशुभ) की ही कर रहे हो!" डाक्टर ने नन्दन की ही तरफ गिलास ऊंचा उठाते हुये चेतावनी दी।

"ऐसा क्यों बकता है बे!" घूंट भरकर व्रजनन्दन ने त्योरियां चढ़ा कर पूछा।

"वी० डी० (सूजाक-आतशिक) समेटने आये हो। बेटा, ऐसा शौक है तो अपने बुजुर्गों की तरह दो बीवियाँ रखो, चार रखो, दस रखो!" डाक्टर नसीहत के स्वर में कहता गया, "अनजाने तालाब में डुबकी लगाने में सदा आशंका, जाने कब मगर पांव थाम ले!"

"बड़े दाना बन रहे हो मुंशी जी!" व्रजनन्दन ने डाक्टर की सावधानी का मजाक किया, "तुमसे कह तो दिया बाजारू नहीं है। यह तो नित्तन से पहले ही शर्त हो चुकी है। सुशिक्षित और सम्मानित समाज की; समझे पट्ठे! अबे साथ सो लेना ही तो सब कुछ नहीं है! संगत और चुहल में ही असली मजा है। बीवी का क्या है, दो हुईं या चार! बीवी तो बीवी है, जैसे पहाड़ी लोग कहते हैं—'वही बिस्तर वही सुपने!' उसमें थ्रिल (उमंग) क्या? बुद्धू आदमी, इस प्रजातन्त्र और स्त्रियों के समान अधिकार के जमाने में दो और दस बीवियों का सुपना देख रहे हो! अरे, एक को ही सन्तुष्ट रखना मुश्किल है। वह जमाना लद गया कि स्त्री के मन और सन्तोष का सवाल ही नहीं था। ठाकुर साहब को जचती गयी, वे उन्हें रनिवास में समेटते गये। हिन्दू कोड-बिल ऊपर से चला आ रहा है, मुंशी जी क्या समझते हो? समता और प्रजातन्त्र के जमाने में शौक और इश्क भी समता और प्रजातंत्रात्मक ढंग से ही पूरा होना चाहिये!"

"क्या कहने?" डाक्टर ने विद्रूप में हाथ फैला कर उत्तर दिया, "यह जो भूख की मारी आप के शौक के लिये चली आ रही हैं; प्रजातन्त्र, स्वतन्त्रता और समता का ही तो आनन्द लेंगी?"

"जानता तो कुछ है नहीं, बकें जायेगा? हम बाजारू हैं?" नन्दन ने आग्रह से प्रश्न किया, "जैसे हमें शौक है, औरत को शौक नहीं होगा? सुन!"

नन्दन ने डाक्टर का कन्धा छू कर समझाया, "नित्तन को नहीं जानता तू ? एक ही हरामी है। उसने जाने कितनी पटा रखी हैं। दो-दो कारें हैं साले के पास। रोज की पार्टी-बाजी। बेईमान की सब जगह पहुंच है। उसने आज के लिये दो से अपाइन्टमेंट किया हुआ है। वे लोग यहां नौ बजे आयेंगे। एक-एक पेग यहां लेकर 'रेलवे इंस्टीच्यूट' के डांस (सम्मिलित नाच) में चले जायेंगे या किसी दूसरी जगह। जैसा मौका हो; या जहां तुम कहो!"

"हिश्त!" सिर हिला कर डाक्टर ने अंग्रेजी में कहा, "मुझे क्या मतलब! मैं तुम लोगों के साथ नहीं जाऊंगा!"

"क्यों!" नन्दन ने त्योरियां चढ़ाकर डाक्टर की ओर देखा परन्तु दरवाजे से आहट पाकर चुप हो गया। बैरा एक बड़ी किश्ती पर कबाब, आमलेट और सलाद की प्लेटें लिये भीतर आया। उस की उपेक्षा कर नन्दन अपनी घड़ी की ओर देखते हुये अंग्रेजी में बोला, "नौ तो बज रहे हैं।" और उसने बैरे को सम्बोधन किया, "देखो! तीन गिलास और तीन सोडा और दे जाओ!"

बैरे के बाहर जाने पर नन्दन के माथे की त्योरियां फिर उभर आयीं— "क्यों, तू क्यों नहीं चलेगा हमारे साथ?"

"वेश्याओं से मुझे नफरत है।"

"उल्लू है! किसने कहा वे वेश्या हैं? पढ़ी-लिखी भले घर की लेडीज़! जिस को चाहे वेश्या कह दिया?"

"कौन भला परिवार अपनी स्त्रियों को ऐसे आने देगा?"

"तेरा मतलब है औरतें सोसाइटी में बाहर न निकलें? बड़ा दकियानूसी आदमी है तू!"

"मेरी बीवी किसी के शौक और चेंज के लिये जाये तो मुझे अच्छा लगेगा? ...तेरी बीवी जाये तो तुझे अच्छा लगेगा? तुम्हारे लिये औरतों की आजादी का मतलब है, दूसरों की स्त्रियों को आप का शौक पूरा करने की आजादी। अपनी बीवी को तो ताले-चाबी के भीतर 'फिक्सड अकाउन्ट' में बन्द रखो और दूसरों की औरतों से 'करेंट अकाउन्ट' चलाओ! दुनियां में बस एक तुम्हीं तो छैले हो न? कोई तुम्हारे ही कान काट ले! तुम साले अपने पांव तले की डाल काट रहे हो! समझते हो, दूसरों को गिरता देखकर हंसोगे! क्यों बेटा?"

"ओफ, बड़ा बुजुर्ग बन गया है!" नन्दन कह रहा था परन्तु बराम्दे में जूतों की खट-खट की आहट पाकर बोला, "नित्तन आता होगा......!"

"हलो वकील साहब !"

"आइये, आइये !" [illegible] [illegible] के [illegible] थी । उसे एक ओर हटा कर वह [illegible] के लिए दरवाज़े की ओर आने का यत्न कर रहा था । [illegible] नितन ने भीतर आकर [illegible] दरवाज़े के [illegible] खड़ी दो युवतियों को सम्बोधित किया, "आइए ! आइए !"

आधुनिक [illegible] वेशभूषा में दो युवतियों [illegible] प्रवेश किया । डाक्टर भी सम्मान प्रदर्शन के लिये उठ खड़ा हुआ । [illegible] भीतर कदम रखने वाली युवती का परिचय दिया—"मिस [illegible] !" और दूसरी युवती की ओर संकेत कर [illegible], "मिसेज [illegible] !"

नितन ने ब्रजनन्दन से युवतियों का परिचय कराने के लिए उसकी ओर आँखें कीं परन्तु [illegible] ब्रजनन्दन का चेहरा [illegible] और क्रोध से [illegible] गया था । [illegible] डाक्टर ने भी ब्रजनन्दन की ओर देखा और फिर [illegible] की ओर गई । वह आँखें झुकाये [illegible] थी । [illegible] ।

डाक्टर ने एक बार फिर ब्रजनन्दन, [illegible], नितन और मिसेज सक्सेना की ओर [illegible] और [illegible] की खाली कुर्सी को खींच [illegible]—"बैठ जाइये ! आज सीढ़ियाँ पर बहुत [illegible] है !"

डाक्टर ने ब्रजनन्दन की ओर देखा । [illegible] मेज की ओर आना चाहता था । इस बार [illegible] आगे आ गयी । डाक्टर ने लपक कर मेज पर से [illegible] उठा लिया । [illegible] उसने नितन को सम्बोधन किया—"[illegible], [illegible] हमें [illegible] कर रहे हैं । अरे भाई, हम डाक्टर [illegible], [illegible] काम है [illegible] का इलाज करना । किसी को जख्मी करना नहीं !" [illegible] अपनी [illegible] में डाल लिया ।

ब्रजनन्दन ने [illegible] और [illegible] हाथ [illegible] रह गया । नितन [illegible], मिसेज सक्सेना [illegible] थी । [illegible] अनुरोध [illegible]

ओर देख डाक्टर बोला—"ओफ ! आप खड़ी हैं ? नित्तन बाबू, आप को कुर्सी दो न ! हां, आज सचमुच बड़ी गर्मी है। क्या अजीब मौसम हो रहा है ?" उसने दीवार की ओर बढ़ बिजली के पंखे का स्विच घुमा दिया। नित्तन और नन्दन अब भी खड़े थे। डाक्टर ने उनसे आग्रह किया, "आप लोग भी बैठिये ! खड़े क्यों हैं ?" नन्दन को उसने अपनी कुर्सी पर बैठा दिया और स्वयं नित्तन के साथ पलंग की पटिया पर जा बैठा।

डाक्टर ने नित्तन और मिस रावल को एक साथ ही सम्बोधन किया— "नन्दन तो आप लोगों की प्रतीक्षा कर रहे थे कि दिन में बहिन से मिलने का समय नहीं मिला। आप लेकर आते होंगे वर्ना घर लौट कर क्या जवाब देंगे ? लखनऊ गये और मिलकर नहीं आये !"

नित्तन ने रूमाल से चेहरे का पसीना पोंछ कलाई की घड़ी की ओर देख बात सम्भाली—"हां, देर हो गई पर पहले टाइम ही नहीं मिला।"

बैरा एक किश्ती में सोडे की तीन बोतलें और गिलास लिये दरवाजे में दिखायी दिया। डाक्टर ने आगे बढ़ ट्रे उसके हाथ से ले ली—"ठीक है, थोड़ी देर में आना।" बैरे को लौटा डाक्टर ने ट्रे तिपाई पर टिका दी।

"आप बहुत थक गयी हैं !" डाक्टर ने मिस रावल के समीप आकर कहा—"सीढ़ियां तेजी से चढ़ी होंगी। देखूं, आपकी नब्ज देखूं !" मिस रावल की नब्ज अपनी उंगलियों से टटोल कर डाक्टर बोला, "धड़कन बढ़ गयी है। आप थोड़ा पानी पी लीजिये ?" एक गिलास में बहुत थोड़ी सी ह्विस्की डाल उसे सोडे से भर, डाक्टर ने मिस रावल की ओर बढ़ाया, "लीजिये !"

मिस रावल ने इनकार में सिर हिलाते हुये गिलास हाथ से परे हटा दिया।

"मैं डाक्टर हूं। आपको दवाई दे रहा हूं।" अधिकार से डाक्टर ने कहा।

"नहीं, नहीं !" मिस रावल ने सिर गिलास से पीछे हटा लिया, "मुझे बदबू मालूम होती है।"

डाक्टर ने दूसरे गिलास में निरा सोडा डाल उन्हें थमा दिया। दो चार घूंट ले, गला तर हो जाने पर वे बोलीं—"जाने कभी-कभी क्या हो जाता है मुझे ?···दिल डूबने सा लगता है। जब भी तेज चलती हूं, ऐसा हो जाता है।" मिस रावल आवाज से बीमार मालूम हो रही थीं, "नित्तन बाबू ने कहा, भाई साहब आये हैं। अवन्ती होटल में ठहरे हैं। सुबह जरूर चले जायंगे। मैंने कहा, मैं इसी समय चलूंगी !"

"हाँ" डाक्टर ने सिर सुजाया, "नन्दन भी परेशान था। कह रहा था, नित्तन बाबू ने आपको लिवा लाने के लिये कहा था। इतनी देर हो गयी है, अब आप कैसे आ सकेंगी ? सुबह आप से मिलने का समय न होगा। गाड़ी बहुत सवेरे चली जाती है।" उसने नन्दन की ओर देखा, "अब तो तुम सुबह बेफिक्री से गाड़ी पकड़ सकते हो !"

डाक्टर को नन्दन से बात करते देख मिसेज सक्सेना ने साकेत से नित्तन का ध्यान आकर्षित कर धीमे से कहा—"बहुत देर हो जायगी !"

"हाँ" नित्तन ने समर्थन के लिये अपनी घड़ी की ओर देखा।

डाक्टर ने उनका अभिप्राय समझ कर भी नन्दन को सम्बोधन किया—"यह भी क्या आना हुआ ? 'सी वीच' फिल्म की बड़ी तारीफ सुनी है। सब लोग साथ-साथ देखते ! खैर, अब टाइम ही नहीं है।" अपनी घड़ी पर नजर डाल वह बोला, "इन लोगों को देर हो रही है। सुनो, तुम सुबह से बहुत थक गये हो, क्या तकलीफ करोगे ? मुझे तो उसी रास्ता जाना है। बहिन को मैं पहुँचा दूंगा। तुम परेशान न हो !" वह उठ खड़ा हुआ।

सब लोग उठ खड़े हुये। नन्दन भी उठा परन्तु चुप ही रहा। चलते-चलते डाक्टर ने घूम कर कहा—"आज तो पिस्तौल जेब में है। भाई, अंधेरी रात का मामला है। देखें, काम आता है या नहीं ? और अगर आज इसकी जरूरत साबित न हुई तो तुम्हारी भेंट कल ही लौटा दूंगा। यह भी क्या भेंट है !" अपनी जेब की ओर नित्तन का ध्यान आकर्षित कर डाक्टर ने कहा, "कि पास रखने में डर लगे ! यह डर से क्या बचायेगी ? और कमबख्त जेब अलग फटी जा रही है…चलिये अब !" उसने मिस रावल को सम्बोधन किया।

×   ×   ×

ब्रजनन्दन की बहिन को कालेज के हाते तक पहुँचा कर जब डाक्टर होटल लौटा तो नन्दन के कमरे की बिजली वैसे ही जल रही थी। वह कपड़े बदले बिना पलंग पर लेटा, दोनों हाथ सिर के नीचे दबाये छत की ओर टकटकी लगाये था। मेज पर बोतल गिलास और सब सामान वैसे ही पड़े थे।

"नन्दन" डाक्टर ने पुकारा।

नन्दन ने उसकी ओर देखा और मौन रह गया।

'[illegible] ?"

[illegible] ।

'[illegible] !" [illegible]

[illegible] है [illegible] लेकिन [illegible]

[illegible] और [illegible] ! [illegible] किसी की

[illegible] है । [illegible] जीवन का भी [illegible]

[illegible] है ? [illegible]

है । [illegible] और [illegible] ? [illegible] और [illegible]

[illegible] और [illegible] है [illegible] के लिए [illegible]

[illegible] !"

साहु और चोर

मित्र को देहली पहुँचने की सूचना तार द्वारा दे दी थी परन्तु बम्बई मेल स्टेशन पर ठीक चार बजे पहुँची। सोचा—मित्र के यहाँ चाय-नाश्ता हो चुका होगा, उसे व्यर्थ दुबारा तैयार करना पड़ेगा। सामान वेटिंग रूम के क्लर्क को सौंप दिया। नाश्ता स्टेशन के भोजनालय में कर लिया। वेटिंग रूम में लौट कर बाहर बैठे क्लर्क से एक कुर्सी बाहर देने का अनुरोध किया।

चाय के समय सिगरेट सुलगा लेने की इच्छा हुई। केस में सिगरेट समाप्त हो चुके थे। सूटकेस खोल नया टीन निकाल कर बाहर आ रहा था। वेटिंग रूम का दरवाजा खुला। एक सुवेश युवक भीतर आया। वह खद्दर के रंग की हल्की ऊनी पतलून और खाकी कोट पहने था। हाथ में अखबार रूल की तरह लिपटा हुआ था।

याद आया—यात्रा में भी वह युवक कुछ स्टेशनों पर दिखाई दिया था। जब ट्रेन लम्बी दौड़ के बाद किसी स्टेशन पर थमती तो मैं बैठा-बैठा ऊब जाने के कारण चहलकदमी के लिये प्लेटफार्म पर उतर जाता। वह युवक भी अख-बार पढ़ता हुआ या वैसे ही चहलकदमी करता मेरे पास से गुजर जाता। हमें एक दूसरे से मतलब न था इसलिये आँखें मिल जाने पर भी, तटस्थता से नजरें बचा लेते। जिस समय मैं भोजनालय में नाश्ता कर रहा था, बम्बई मेल पंजाब की ओर चली जा चुकी थी। अनुमान किया, शायद यहाँ गाड़ी बदलनी है। वेटिंग रूम में बैठ कर प्रतीक्षा करेगा।

युवक वेटिंग रूम में आते समय मेरी ओर ही देख रहा था। आँखें मिल गईं। उसने सभ्यता या कुछ लिहाज से अंग्रेजी में मुझे सम्बोधन किया—"अगर आप एक मिनट दें तो कुछ बात करना चाहता हूँ।"

युवक के स्वर और मुद्रा में संकोच और अनिश्चय जान पड़ा। सहसा

कल्पना हुई—"हूं······वही बात होगी—गाड़ी से उतर फाटक पर गया। टिकट देने के लिये जेब में हाथ डाला। सावधानी के लिये टिकट बटुए में रख लिया था।······बटुआ ही गायब। शर्म के मारे कुछ कह नहीं सकता।······मेरा पता लिख लीजिये। एक भद्रलोक के नाते जो सहायता आप करेंगे, उस से उऋण होना अपना नैतिक कर्तव्य समझूंगा आदि, आदि। सज्जनता और दया की आड़ में लूटने वाले, छलिया भद्र लोगों का पूरा चित्र सहसा कल्पना में फिर गया। ऐसे आदमी भद्र लोगों का यह कर्तव्य समझते हैं कि भद्र श्रेणी के सम्मान की रक्षा के लिये हम लोगों को उनकी छलना का शिकार बनना चाहिये।

मन में उठी वितृष्णा को दबा, भद्र लोगों की भद्रता निबाहने के लिये सिगरेट का ताजा कटा टीन युवक की ओर बढ़ाकर उत्तर दिया—"पीते हैं!···लीजिये·········!"

युवक ने विनय से धन्यवाद दे सिगरेट ले लिया। कुर्सी बिल्कुल मेरे समीप खींच ली और मेरे सिगरेट सुलगा लेने की प्रतीक्षा में, हाथ में थमे अखबार को रूल की तरह लपेटते हुये उसने क्षमा सी मांगी—"आप पधारिये, मुझे एक ही बात पूछनी है।"

युवक के व्यवहार से कुछ विस्मय हुआ। एक सिगरेट अपने होठों में ले लिया। माचिस जला पहले युवक की ओर बढ़ा कर पूछा—"आज्ञा कीजिये!" उसने सिगरेट सुलगा ली और मुझ से बैठने का अनुरोध दोहराया। अब संदेह हुआ, शायद गुप्तचर-पुलिस का आदमी है पर मुझसे मतलब! बैठ कर मैंने फिर पूछा, "कहिये!"

युवक मुझसे आंखें मिलाकर अंग्रेजी में बोला और उसने आश्वासन दिया—"मेरी बात से परेशान न हों। विश्वास रखिये, मुझसे आपको किसी भी प्रकार की हानि या कष्ट नहीं होगा।" और फिर कुछ संकोच से बोला, "यह बता दीजिये, आपके पास हजार-हजार के चालीस नोट हैं?"

शरीर में बिजली सी कौंध गई। पहली आशंका यही हुई कि अब पिस्तौल दिखायेगा। पिस्तौल दिखाई नहीं दिया। मन में दूसरी आशंका तड़प गई, टटोल कर देख लूं कि नोट सुरक्षित हैं या नहीं परन्तु सावधानी के विचार से वैसा नहीं किया।

वेटिंग रूम में हम दोनों ही थे। मुझे अकेला देखकर ही वह आया था। बुजुर्ग बैरा भद्र लोगों के कायदे से परिचित था। दो भद्र पुरुषों को समीप

बैठकर आपसी बात करते देख ओट मे हो गया था । अपनी घबराहट छिपाने के लिये, सिगरेट के धुएँ से आखें चरचराने का बहाना कर, पलकें सिकोड मैंने प्रश्न से उत्तर दिया—"क्या ? मैं समझा नही, कैसे नोट ?"

युवक ने गम्भीरता से समझाया—"अगर आपके पास चालीस हजार रुपया है और आप भय के कारण इनकार कर देंगे तो एक आदमी की जान व्यर्थ मे निरपराध चली जायगी !"

युवक की बात से सान्त्वना पाने की अपेक्षा घबराहट ही बढ़ी । उत्तर दिया—"किस की जान ? कैसा चालीस हजार ? तुम्हारा मतलब क्या है ?"

मेरी घबराहट युवक से छिपी न रही । युवक ने अपनी कुर्सी मेरी ओर सरका ली और सिगरेट से कश खीच कर बोला—"आप घबराइये नही, सच बातें कह दीजिये । अगर आपके पास रुपया है तो भी अब आप को कोई खतरा नही । मैं केवल जानना चाहता हूं कि इस मामले मे धोखा तो नही दिया गया ? बम्बई से आते समय आप को 'मनमाड' मे तीन सौ रुपये मे बेचा गया था । उसके बाद मैंने आप को इटारसी स्टेशन पर दो सौ रुपये मे खरीदा है । मैं सिर्फ यह जानना चाहता हूं कि हम लोगों को धोखा तो नही दिया गया ?" युवक सिगरेट से कश खीचता हुआ उत्तर की प्रतीक्षा मे मेरी ओर देखता रहा।

उसके हाथ मे पिस्तौल या छुरा न देख और इस बीच कुर्सी पर करवट ले अपने पास रकम सुरक्षित जान मैंने कुछ क्रोध से उत्तर दिया—"मेरे पास कोई रुपया-वुपया नही है । तुम बड़े विचित्र आदमी हो ? मुझे बेचने और खरीदने का मतलब ?......तुम डकैती और कत्ल करते हो और धोखे की शिकायत भी करते हो ! तुम्हारे जैसे आदमी को तो पुलिस के हवाले किया जाना चाहिये !"

युवक ने सिगरेट को तर्जनी उँगली की तरह चेतावनी मे उठाकर मुझे टोक दिया—"पुलिस में मेरी शिकायत करने से कोई लाभ नही ! उस का प्रबंध हम लोग पहले से रखते हैं । आप को ही व्यर्थ कष्ट होगा । आप की जेब तो कटी नही ! शिकायत किस बात की कीजिएगा ? धोखा तो मेरे साथ हुआ है परन्तु मैं अपने साथ धोखे के लिये पुलिस के सामने गिड़गिड़ाने नही जाऊंगा । ऐसे धोखे और अन्याय का दण्ड देना पुलिस के अधिकार और सामर्थ्य मे है भी नही । पुलिस हमारी व्यवस्था को स्वीकार नहीं करती । ऐसे अपराध का दण्ड हम लोग स्वयं देंगे लेकिन आप अब भय न होने पर भी अपने पास रुपया होने से इनकार करेंगे तो परिणाम मे अन्याय हो जायगा ।"

ऐसे साहसी और स्पष्टवादी व्यक्ति से भरोसा और सांत्वना पाकर भी मैं अपने पास इतनी बड़ी रकम होना स्वीकार न कर सका। उल्टे उस से पूछा—"यह सब क्या चक्कर है ?...मैं कुछ समझ नहीं पा रहा हूं। मेरे पास रुपया होने से तुम्हें क्या मतलब ?...मेरे पास रुपया न होने से किसी की जान क्यों जायगी ?"

युवक मुझे विश्वास दिलाने के लिये हाथ उठाकर बोला—"आप ने कल एक बजे बैंक से हजार-हजार के चालीस नोट लिये थे !...आप बैंक से सीधे स्टेशन पर आये थे !...नोट लेकर आपने अपने कोट के भीतर की जेबों में रखे थे ? टिकट आप ने स्वयं नहीं खरीदा। आपके नौकर या मुंशी ने खरीद कर दिया था। इतना ठीक है !" अपने विषय में इतने सच्चे ब्योरे से बात सुन घबराहट और भी बढ़ी परन्तु विस्मय प्रकट कर दुहाई दी, "जाने तुम किस की बात कर रहे हो ?......किसका रुपया ?...मुझे व्यर्थ में क्यों घसीट रहे हो ?"

मेरे उत्तर से युवक की असुविधा और दुश्चिन्ता और बढ़ गई। उसने मुझे फिर समझाना चाहा—"जिस आदमी ने बैंक से आप का पीछा किया था, वह मनमाड स्टेशन तक आप के साथ आया था। वहां उसके क्षेत्र की सीमा समाप्त हो गई। उसका कहना है कि बम्बई से गाड़ी छूटने के समय तक रुपया आपके कोट की भीतर की जेब में जरूर था। उसके बाद आपने चाहे जहां रख लिया हो ? मनमाड में उसने आपको तीन सौ रुपये में दूसरे आदमी के हाथ बेच दिया। यह दूसरा आदमी इटारसी तक आपके रुपया रखने का स्थान भांपने की कोशिश करता रहा। इटारसी तक असफल रह कर उस ने मुझसे बात की और एक सौ का नुकसान उठा कर उसने आप को दो सौ रुपये में मेरे हाथ बेच दिया। मैं सब यत्न कर हार गया हूं लेकिन जान नहीं पाया कि आप के पास रुपया है तो आपने कहां रखा है ? आपके कोट की जेब में केवल एक नोट एक सौ का और दस-दस के दो तीन नोट हैं। आपके कोट और पतलून में चोर जेबें नहीं हैं। आप मारवाड़ियों की तरह कमीज के नीचे जेबदार बंडी नहीं पहने हैं। आपकी कमर में तागड़ी भी नहीं है। आपने रुपया जूते में नहीं रखा, वर्ना रात में सोते समय आप जूता उतार कर नीचे न छोड़ देते। रुपया आपने सूटकेस या बिस्तर में रख दिया होता तो आप निश्चिन्त होकर टहलने के लिये स्टेशनों पर न उतरते या नाश्ता करने के लिये सामान

को बेपरवाही से न छोड़ जाते ! मैं यह भी नहीं पूछना चाहता कि रुपया आप ने कहां रखा है ? यह मैं स्वयं जानने की कोशिश करूंगा । मैं केवल जानना चाहता हूं कि हम लोगों को धोखा तो नहीं दिया गया । अपनी असफलता के लिये मैं दो सौ का नुकसान उठा लूंगा । यदि दो सौ में चालीस हजार पाने का दांव लगाया जा सकता है तो ऐसे दांव में दो सौ के नुकसान का गम भी न होना चाहिये पर दांव दांव है और धोखा धोखा है ! हम लोगों में यदि धोखा होने लगे तो एक दिन काम नहीं चल सकता । पहले से आप का पीछा करने वाले आदमी को आप का दाम चुकाये बिना मेरा आपकी ओर आंख उठाना भी अनुचित होता । बात यह है कि बम्बई से आपका पीछा करने वाले आदमी पर कुछ दिन पहले भी धोखा देने का सन्देह हुआ था । यदि उसने इस बार सचमुच धोखा दिया है तो उसे दण्ड अवश्य मिलना चाहिये । इस समय मैं गिरोह का नायक हूं । धोखा देने वाले को दण्ड देना मेरा कर्तव्य है । निर्णय आपके सच बोलने पर निर्भर करता है ।" उत्तर की प्रतीक्षा में वह मेरी ओर घूरता रहा ।

मुझे झिझकते देख उसने अनुरोध किया—"विश्वास कीजिये, अब आप को नुकसान का भय नहीं है परन्तु निरपराध का खून होना भी उचित नहीं और अपराधी को दण्ड न मिलने से व्यवस्था नहीं रह सकती ।"

सम्मानित जज के से यह बोल एक अपराधी के मुंह से सुन मुझे ताव आ गया—"तुम स्वयं अपराध में डूबे हो !" मैंने उत्तर दिया, "तुम से बड़ा अपराधी कौन है ? तुम दूसरे को अपराध का दण्ड दोगे ? अगर तुम मेरी जेब काट लेते तो यह क्या निरपराध का खून न होता ?......मैंने तुम्हारा क्या अपराध किया है ?" बोलो ?" मैंने क्रोध से उसे चुनौती दी ।

"यह आप दूसरी बात कह रहे हैं ।" शान्ति से उसने उत्तर दिया । उसका सिगरेट जल गया था । सिगरेट उसने फर्श पर डाल, अपने सैण्डल से दबा दिया । जेब में कैप्सटन सिगरेट की डिबिया निकाल ली । डिबिया मेरी ओर बढ़ायी और एक सिगरेट होंठों में दबा, भवें सिकोड़ कर वह बोला, "यह आप बहुत गहरी बात कह रहे हैं । अगर ऐसे सोचें तो सभी बातें अपराध मानी जायगी । आदमी जिन्दा ही न रह सकेगा ! अपराध तो अपने-अपने समाज में मान लिये गये ढंग और नियम के अनुसार ही समझा जाता है । बुरा न मानिये ! अच्छा आप बताइये, यह चालीस हजार आपने क्या ईमानदारी से कमाया है ? यह

उठ जायगा। इसी बीच में आप की भीतर की जेब से नोट खींच लेने होंगे। कहिये, आप इतनी सफाई से काम कर सकते हैं ? आप के तरीके दूसरे हैं। आप की फर्म भांप लेती है कि किस चीज की कमी से लोगों को परेशानी होने वाली है। फर्म वही चीज अधिक मात्रा में जमा करके, लोगों की परेशानी बढ़ा कर, उन की जेबों से खूब रुपया खींच लेती है। या आप की फर्म बाजार में दस लाख रुपये की मूंगफली बेचने के लिये सट्टा कर जिन्स का भाव गिरा देगी। गिरे हुए भाव पर सचमुच बीस लाख की मूंगफली खरीद लेगी। भाव चढ़ेगा पर माल रोके रहेंगे। लोगों को अपनी आवश्यकता पूर्ति के लिये उचित से अधिक दाम लेने के लिये मजबूर करेंगे। यह भी लूट का तरीका है। आपका साधन है, आपकी पूंजी। कुछ लोग छुरी मार कर आसामी को विवश करके रुपया छीन लेते हैं। आप आदमी को अपनी पूंजी से विवश करते हैं। हम लोग छुरी मार कर या सेंध लगा कर रुपया लेना जहालत और जंगलीपन समझते हैं और अपने तरीके को बुद्धि और चतुरता का वैज्ञानिक ढंग समझते हैं, आप अपने तरीके को उचित समझते हैं।"

"सुनिये !" एक और लम्बा कश खींच कर वह बोलता गया, "दो साल पहले १९४३ में मैं कलकत्ते में चावल की व्यापारी फर्म में नौकर था। फर्म ने चावल खरीद-खरीद कर महगाई कर देने के तरीकों से छः मास में तीन करोड़ रुपया कमा लिया। फर्म तो चावल पैदा नहीं करती। लोगों से सस्ता चावल खरीद कर उन्हें महगे दामों वापिस बेचने के खेल में फर्म ने तीन करोड रुपया कमा लिया। इसे आप ईमानदारी कहेंगे या चतुरता ? और सुनिये, काम मैं और मेरे जैसे लोग करते थे। फर्म हमारी मार्फत लाखों बना रही थी। मुझे मिल रहे थे केवल सवा सौ और भत्ता। कम्पनी हम से दूसरों की जेब कटवा रही थी और बदले में हमारी भी जेब काट रही थी। समाज के सम्पूर्ण कारोबार का मूल मंत्र सस्ता खरीद कर महंगे से महंगा बेच देना है; कम मजदूरी देकर माल बनवाना और माल को अधिक से अधिक दाम पर बेचना लेकिन इस धोखे को निबाहते रहने के लिये धोखे के नियमों के प्रति ईमानदारी आवश्यक है। ऐसे कारोबार में भी जब आप से चावल के दाम लेकर कंकर की बोरियां सप्लाई कर दी जायें तो आप धोखे के लिये दण्ड देना चाहेंगे या नहीं ! यही बात आप हमारे बारे में भी समझ लीजिये। हर समाज में दूसरों की जेब से रुपया निकालने के कुछ स्वीकृत ढंग होते हैं। उन्हीं के अनुसार चलना होता

है । ऐसे विषय में बातें करने से दूसरे की मूर्खता भी समझना भी ठीक से नहीं जान सके हो ।"

युवक के [illegible] से आगे का समर्थन करने के ढंग में आत्माभिमान का भाव स्पष्ट झलक रहा था । मैंने उसी पर बात करनी चाही—"चोरी और चोरी में, दूसरे का धन छीन लेने के लिये भी अभिमान किया जा सकता है, यह आज पहली बार देख रहा हूं ।"

वह मेरी मूर्खता से हँसा नहीं और बोला—"आप चोरी की बात करते हैं ? दूसरे का धन ले लेना चोरी है ? बुरा न मानिये, धन तो समाज में [illegible] । उसे सभी और [illegible] ही पैदा करते हैं । ऐसा सब व्यवसाय इस धन को पैदा करने वालों के हाथों से अधिक से अधिक मात्रा में हथिया सकने की चतुरता ही है । अलबत्ता चोरी के कुछ तरीकों को समाज स्वीकार करता है और कुछ को अपराध ठहरा दिया गया है । जो लोग समाज द्वारा स्वीकृत निर्वाह करने के तरीकों से स्थान नहीं पाते, वे कीड़े-मकोड़ों की तरह छीना-झपटी से निर्वाह करते हैं ।" आगे से अधिक समाप्त हो गया सिगरेट फर्श पर डाल कर बूट से कुचलते हुये उसने मुस्कराकर कहा, "मैं आप के प्रति कृतज्ञ हूं । आपने मुझे बहुत घृणित और कठिन काम से बचा लिया ।"

युवक की सफाई और व्यवहार का मन पर कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि सहानुभूति प्रकट किये बिना न रह सका । समझाना चाहा—"तुम इतने पढ़े लिखे और समझदार नौजवान हो, इस प्रकार के घृणित कामों में फंस कर तुम्हें आत्म-ग्लानि अनुभव नहीं होती ?"

युवक के अभ्यस्त हाथ डिबिया से नया सिगरेट निकालने लगे और उसने अत्यन्त विस्मय से मेरी आंखों में आंखें गड़ाकर प्रश्न किया—"किस बात के लिये आत्म-ग्लानि ?······क्यों ?······ मैं क्या कर रहा हूं ?"

"तुम्हें अपने असामाजिक कामों के लिये लज्जा नहीं अनुभव होती ? तुम क्या अपने काम की बाबत भले आदमियों में सफाई से बात कर सकते हो ?" उसकी आंखें खोलने की आशा से सहानुभूति प्रकट की ।

वह मुस्कराहट छिपाने के लिये होंठ दबाकर क्षण भर चुप रहा, फिर बोला—"आप भला आदमी किसे समझते हैं ? भला आदमी वह है जिस का आदर हो आदर रुपया खर्च कर सकने से होता है । मैं बुराई क्या करता हूं ? हां, जेब काटना आप बुरा समझते हैं !······हम लोग लाखों में से किसी एक

की जेब काटते हैं। बार-बार शायद आप किसी की जेब नहीं काटते। जेब काटने का अर्थ यह है, दूसरे की कमाई छीन लेना। बताइये, हजारों आदमियों के श्रम या कमाई का धन जिन्दगी भर उनसे छीनते रहना भलमनसाहत है? हम लोग भी आपस में मिलते हैं तो बड़े गर्व से अपनी सफलता की बात करते हैं परन्तु आप लोगों के सामने कैसे कर सकते हैं? आप ही बताइये, क्या जर्मनी, इंगलैण्ड या रूस सैनिक तैयारी के रहस्य दूसरों को बता सकते हैं? क्या आप अपनी कम्पनी के तरीके और रहस्य दूसरी कम्पनियों को बता सकते हैं? आखिर पिछले युद्ध में बड़े-बड़े सेनापति क्या कर रहे थे? वे जितना नरसंहार कर सकते थे, दूसरे देश का जितना अधिक धन नष्ट कर देते थे, उतनी ही उन की प्रशंसा होती थी। व्यापार की होड़ का भी यही अर्थ है। आखिर युद्ध होता क्यों है? इसीलिये न कि संसार के दूसरे देशों को लूटने का अधिक अधिकार किसे हो? हम लोग भी वही करते हैं जो हमारे समाज के आर्थिक जीवन का नियन्त्रण करने वाले लोग कर रहे हैं। अन्तर यह है कि दूसरे का धन छीन लेने के कुछ तरीकों को समाज ने मान्यता दे दी है, कुछ को अपराध करार दे दिया है। यह केवल मान लेने की बात है। देखिये न, एक समय बाबर सेना लेकर इस देश का धन छीन लेना अपना अधिकार समझता था। आज अमेरिका-इंगलैण्ड व्यापार में वही बात कर रहे हैं। दूसरे का धन छीन लेने के जिन दावों में आप लोग कच्चे हैं, जिनमें आप के मात खा जाने का डर है, उनसे आप खिसिया जाते हैं। असल में खेल की मूल बात तो वही है, दूसरे के श्रम का फल चतुरता से हथिया लेना परन्तु एक तरीके को साहू का मान लिया गया है और दूसरे को चोर का ... ।"

इसी बीच प्लेटफार्म पर एक गाड़ी आकर खड़ी हो गयी थी। युवक कुर्सी से उठ खड़ा हुआ। गाड़ी की ओर युवक ने संकेत कर कहा—"क्षमा कीजिये, जरा सी बात के लिये मैंने आपका इतना समय बरबाद कर दिया। मुझे इस गाड़ी से लौटना है।"

युवक की बातों से दुख हो रहा था और उसे प्रकट किये बिना न रह सका—"अफसोस है, तुम्हारी जैसी बुद्धि के व्यक्ति की ऐसी दुर्दशा हो रही है। तुम समाज के लिये कितने उपयोगी हो सकते थे?"

"देखिये, दया न दिखाइये!" मुस्कराहट से उसने चेतावनी दी, "दया की भीख मांगने से उकता कर ही मैंने यह मार्ग पकड़ा है। मेरी जैसी बुद्धि और

ईमानदार व्यक्ति भी इस समाज में साधनों की मालिक श्रेणी की सेवा के अतिरिक्त और कुछ नहीं कर सकता। चाहे वह कितना बड़ा महात्मा या पण्डित हो। मालिक श्रेणी की दासता ही साहूपन है और विरोध चोरी!" भवें सिकोड़ और गूढ़ विचार में सिर के बालों में उंगलियां चलाते हुए उसने कहा, "कामरेड लोग कई बातें ठीक कहते हैं परन्तु तथ्य उन में भी कुछ नहीं। वह साधनहीनों की लीडरबाज़ी है! एक तमाशा है! एक झक है! वे कहते हैं, मेहनत करने वालों का ही राज कायम हो जाना चाहिये। मजदूर का राज हो जायगा तो मजदूर कड़ी मेहनत करेगा क्यों? और क्या हम लोगों की जिन्दगी में ऐसा हो सकता है? मैंने चोरी बाप के इलाज के लिये की थी। चोरी करके रुपया लेकर जब मैं घर पहुंचा तो बाप मर चुके थे। उनका कुछ न बना। ऐसे ही अगर हम लोग कामरेडों का आन्दोलन करते-करते मर जावें तो बाद में मजदूर राज हो जाने से हमें क्या फायदा? यह अच्छा-खासा मजाक है। कामरेड केवल बात करता है। केवल पूंजीपति को गाली देता है। वह न पूंजीपति को मारता है और न उसका पैसा छीनता है, इसीलिये मैं उनका विश्वास नहीं करता! ......हां, गाड़ी जा रही है, धन्यवाद!" वह लपक कर प्लेटफार्म पर खड़ी ट्रेन की ओर बढ़ गया।

उसके मुंह फेरते ही मैंने एक बार फिर चालीस हजार के नोटों को संतोष से टटोला। नोट सुरक्षित थे। सन्तोष का श्वास लिया, मैं साहू हूं, चोर नहीं। यह रुपया फर्म की अमानत थी और इसे ग्यारह बजे, टेंडर खुलने के समय से पहले ही ठेका देने वाले अधिकारियों के पास पहुंचा देना आवश्यक था।

इसी सुराज के लिये ?

'तस्वीर-महल' के घण्टाघर से साढ़े दस बजे की टकोर गूज गई तो निरंजन व्याकुल होने लगा। तस्वीर महल के घण्टाघर की बड़ी घडी, काली रात से अधिक घने काले पेड़ो की चोटियों के के ऊपर सिर उठाये थी। घड़ी अंधेरे मे प्रकाश के थाल के समान चमक रही थी। निरजन की नजर बेचैनी मे बार-बार घड़ी की ओर उठ जाती थी।

लखनऊ के साथियो ने निरजन को आश्वासन दिया था कि कानपुर में क्रान्ति का काम बढ़ाने के लिये वे उसे दो बम देंगे, इसीलिये वह कानपुर से आया था और लखनऊ में, चौक के पास विक्टोरिया पार्क मे बम मिलने की प्रतीक्षा कर रहा था। कोई व्यक्ति ठीक दस बजे बम लेकर आने वाला था। निरजन कभी निश्चित स्थान पर बैठ जाता और कभी टहलने लगता। दस बया, ग्यारह भी बज गये। वह निराश होकर चलने को ही था कि पार्क के बीच की सड़क पर, ठीक उसके सामने आकर दो मोटर साइकिलें और एक लारी खड़ी हो गई और उन पर से बिजली की टार्चें लिये सशस्त्र सिपाही कूद पड़े।

निरजन के एड़ी से चोटी तक बिजली तड़प गई और वह तुरन्त समझ गया कि पुलिस उसी की तलाश मे आई होगी। मस्तिष्क में कौंध गया, चौबे पकड़ा गया होगा और उसी से पुलिस को उसके यहाँ प्रतीक्षा करने का पता चला होगा। वह फुर्ती से पार्क की बाड़ की झाडियो मे घुस गया। पार्क और बाजार के बीच की सडक फाद कर वह सामने 'बानवाली' गली मे तेज कदमों से चल दिया। उसकी पीठ पर पीछा करने वालो के दौड़ने की आहट मिली। वह सिर पर पाव रख कर भाग निकला। एक गली से दूसरी में होता हुआ चौक के बाजार पहुंच गया।

रात के सवा ग्यारह बजे बाजार बन्द हो चुका था। कहीं-कहीं केवल हलवाइयों या पनवाड़ियों की दुकानें खुली थीं। सूने बाजार में दौड़ना उचित न था। यहां दौड़ने से लोगों का ध्यान उस की ओर ही जाता। पुलिस पीछा कर रही थी। उस समय सूने बाजार में दिखाई देने वाले सभी आदमियों की तहकीकात हो सकती थी। निरंजन अनजाने स्थान में आत्मरक्षा के लिये कातर हो उठा। चौक दरवाजे की ओर मोटर साइकिल की गरज सुनाई दी। वह बांई ओर की गली में घूम गया। गली के शुरू में ही एक दरवाजा खुला देख उस में घुस गया। दरवाजा दुमंजिले पर बने कमरे के जीने का था। जीने से ऊपर बांई ओर के कमरे में खूब उजाला था। निरंजन ने सोचा कि वह पुलिस पैट्रोल के आगे निकल जाने तक वहीं छिप जाये। पराये मकान में घुस कर निरंजन ने पुलिस के ध्यान से बचने के लिये उसका दरवाजा भी उड़का देना चाहा।

दरवाजे को उड़का देने के लिये निरंजन का हाथ उठा ही था कि ऊपर से प्रकाश पड़ा। उसने घूम कर देखा, जीने के ऊपर लालटेन हाथ में लिए एक स्त्री खड़ी थी और उसे देख रही थी। निरंजन घबराया कि स्त्री अपरिचित के मकान में घुस आने से भयभीत हो चिल्ला न पड़े परन्तु स्त्री की निर्भय आवाज सुनाई दी—"आइये, आदाबअर्ज है! जनाब, तशरीफ लाइये!" स्त्री पान भरे मुंह से कहती गई, "आपको अंधेरे में जहमत हुई। अभी-अभी बस दो मिनिट के लिये रोशनी उठा ली थी, तशरीफ लाइये!"

निरंजन ने परिस्थिति भांपी और सांत्वना अनुभव की। मन में उठी ग्लानि को दबा कर समयानुकूल व्यवहार करने के निश्चय से उसने स्त्री के आदाबअर्ज का उत्तर लखनवी ढंग से जरा गर्दन झुका कर और हाथ को अदा से उठा कर दिया। उसने जीने के ऊपर खड़ी वेश्या की ओर देखकर अनुमति मांगी—"इजाजत हो तो किवाड़ों में सांकल लगा दूं!"

"हो जायगा, आप क्यों तकलीफ कीजियेगा!" उत्तर मिला, "कल्लन आकर सांकल लगा देंगे। आप तशरीफ ले आइये!"

निरंजन किवाड़ों में सांकल लगा कर जीना चढ़ गया। बांई ओर के कमरे में बिजली की रोशनी थी। आराम और सजावट का सामान जुटाने का फूहड़ और असमर्थ-सा प्रयत्न दिखाई दे रहा था। एक ओर हरे रंग के फूलदार पलंगपोश से ढका पलंग लगा हुआ था और दूसरी ओर एक बहुत पुराने ढंग

का सोफा, जिसकी गद्दी का रंग चिकनाई और मैल से ढक गया था। फर्श पर पुरानी, रंग उड़ी हुई दरी बिछी थी।

स्थान की मालिक वेश्या का संकेत पाकर निरंजन गलाजत और गन्दगी के प्रति घृणा दबा, बेतकुल्लफी दिखाने के लिये सोफे पर बैठ गया। वेश्या ने छत से लटका बिजली का पंखा चला दिया और बाजार में खुलने वाली खिड़कियों पर बंधी चिकें पर्दे के लिये खोल दीं। पलंग के समीप तिपाई पर रखा पानदान लेकर वह निरंजन की ओर आ गई। सोफे पर बैठ कर उसने पानदान अपने और निरंजन के बीच रख लिया। पान लगाते हुये आत्मीयता से मुस्कराकर और एक आंख दबा कर पूछा—"कुछ शौक कीजियेगा ? अबेर तो हो गई है लेकिन कल्लन ले ही आयेंगे। मुआ अद्धे पर एक रुपया फालतू ले लेगा; और क्या ?"

निरंजन को अपनी ओर अनजान की तरह विस्मय से चुप देखते देख कर वेश्या ने पल भर भांपा और फिर मुस्कराकर बोली—"साहबजादे, क्या नया शौक कर रहे हैं ? ऊपर आते भी सहम रहे थे। ऐसी क्या बात है ? तमकीन रखिये, यह शरीफ लोगों की जगह है !"

"नहीं तो" निरंजन ने गर्दन ऊंची कर साहस दिखाया, "वाह, ऐसी क्या बात है ?" और फिर अपनी जेब से सिगरेट की डिबिया निकाल वेश्या की ओर बढ़ा कर बोला, "शौक कीजिये !"

वेश्या ने मुस्कराकर आदाबअर्ज किया और सिगरेट लेकर फिर आदाबअर्ज किया और कहती गई—"पीने का शौक नहीं करते ? अच्छा ही है। उससे सेहत बरबाद होती है और पैसा भी।" पान लगाना छोड़ कर उसने माचिस जला कर निरंजन के सामने की। निरंजन के सिगरेट सुलगा लेने पर उसने अपनी सिगरेट भी सुलगा ली। वेश्या पान के बीड़ों की जोड़ी दोनों हाथों में निरंजन के सामने पेश कर बोली, "आप सुविस्ते से तशरीफ रखिये, थकान मालूम होती होगी, पलंग पर लेट जाइये न !"

"नहीं मैं आराम से......"निरंजन उत्तर दे रहा था कि नीचे बाजार में बहुत से लोहा लगे बूटों के दौड़ने की आहट सुनाई दी और कड़कती हुई ऊंची आवाजों में ललकारें—'ठहरो ! ठहरो !' और साथ ही बन्दूक की गूंज।

वेश्या खिड़की की ओर लपकी। वह देखने के लिये फिर उठा ही रही थी कि निरंजन ने उसे हाथ से पकड़ कर पीछे खींच लिया।

वेश्या ने विस्मय से प्रश्न में निरंजन की ओर देखा। निरंजन ने होठों पर मौन के संकेत के लिये उंगली रख दी। औरत विस्मय से निरंजन की ओर देखती रह गई।

"बांध लो इसे भी !" नीचे से साफ सुनाई दिया और किसी के गिड़-गिड़ाने की आवाज। कुछ प्रश्नोत्तर। साथ ही बहुत जोर से वेश्या का जीना खटकाये जाने की आहट हुई।

"कल्लन से कहूं खोले !" वेश्या ने घबराहट से कहा।

निरंजन वेश्या के बिलकुल समीप हो कातर स्वर में बोला—"पुलिस मुझे पकड़ने आई है। मुझे बचा लीजिये !"

वेश्या की आंखें विस्मय से फैल गई। उसने निरंजन को सिर से पांव तक देखा और अपने आप को वश में कर हाथ का पंजा दिखा धीमे स्वर में उत्तर दिया—"पांच सौ लूंगी !"

किवाड़ों पर और जोर की चोट सुनाई दी। निरंजन चुप रह गया। वेश्या ने दरवाजे से जीने में झुक कर पुकारा—"ए कल्लन मियां !" और निरंजन को बांह से पकड़ जीने में ला दीवार के साथ खड़ा कर दिया। आड़ के लिये कमरे के दरवाजे का किवाड़ उस के सामने कर दिया। नीचे जीने के किवाड़ और भी जोर से खटखटा उठे।

"आ रही हूं जनाब, जरा तसकीन कीजिये !" वेश्या ने उत्तर दिया और लालटेन हाथ में ले कर जीना उतर गई। निरंजन दम रोके किवाड़ के पीछे खड़ा रहा। नीचे के किवाड़ खुले। वेश्या की आवाज आई—"आइये !"

"कौन मुनीर ?"

"हां हुजूर, बांदी है !"

"ऊपर कौन है ?"

"कोई नहीं हुजूर, तशरीफ लाइये !"

"चिक में कौन झांक रहा था ?"

"हुजूर की बांदी थी। बड़ा सौक मालूम हुआ। दरोगा साहब, कोई संगीन वारदात हो गई क्या ? तशरीफ लाइये, एक बीड़ा पान हाजिर··· !"

"मुनीर, इधर नीचे बाजार में कोई भाग कर तो नहीं निकला ?"

"अल्ला नवाजत रखे, होगा कोई मुआ। बांदी क्या कह सकती है ? हुजूर, आप की दुआ से खिड़की में थोड़े ही बैठती हूं ?"

निरंजन को आहट से जान पड़ा कि बात करने वाले लोग जीने के सामने से जा रहे थे। मुनीर की आवाज फिर सुनाई दी—"नजरे-इनायत बनाये रखियेगा दरोगा साहब, खुदा हाफिज !"

जीने में साकल लगने की आहट हुई, मुनीर के ऊपर आने की आहट हुई। वह दो-तीन मिनिट अपने कमरे में निश्चल बैठी रही। कमरे में बिजली बुझ गई। निरंजन के सामने से किवाड़ हटा और फुसफुसाहट सुनाई दी—"आ जाओ !"

निरंजन कमरे मे चला गया। बाजार की रोशनी चिकों से छन कर कमरे में हल्के प्रकाश की धारियां सी डाले हुए थी। मुनीर ने निरंजन के समीप आ कर धीमे स्वर में प्रश्न किया—"माजरा क्या है साहबजादे ?"

निरंजन कुछ उत्तर न दे सका। मुनीर ने फिर रहस्य के स्वर में प्रश्न किया—"डकैती करके भागे हो या कत्ल करके आये हो ?"

"बहिन, मैं न डाकू हूं, न कातिल !" बहुत धीमे परन्तु दृढ़ स्वर में निरंजन ने उत्तर दिया, "हम लोग मुल्क और कौम की आजादी के लिये, सब लोगों की आजादी के लिये, अंग्रेजों के जुल्म के खिलाफ लड़ रहे हैं इसलिये पुलिस हमें गिरफ्तार करना चाहती है।"

मुनीर चुप रह गई। निरंजन को उसके व्यवहार में निराशा और परेशानी जान पड़ रही थी। निरंजन ने धीमे स्वर में समझाना चाहा—"बहन, अंग्रेज हमारे मुल्क का, हमारी कौम का खून पी रहे हैं। उनकी गुलामी में हमारी कौम का मुंह काला हो रहा है। हम लोग अपने मुल्क की आजादी और खुशहाली के लिये, अपने मुल्क में अपने लोगों का राज कायम करने के लिये लड़ रहे हैं।"

"हम नहीं जानते।" धीमे स्वर में मुनीर ने झुंझलाहट प्रकट की, "हमने कह दिया था, हम पांच सौ लेंगे, हां ! हमने कितना खतरा झेला है ! हम पकड़े जाते तो हमारी कितनी बदनामी होती ! तुम रुपया नहीं दोगे तो हम अभी बाजार से सिपाही को पुकार लेंगी। सच कह रही हूं।" मुनीर निरंजन को धमकाकर उसकी ओर घूरती रही।

"तुम पांच सौ रुपया चाहती हो ?" निरंजन ने साहस कर मुनीर से पूछा, "पांच सौ रुपया क्या सारे मुल्क और कौम की आजादी से भी अच्छा है ? मेरे पास रुपया नहीं है। मैं केवल अपनी जान दे सकता हूं। मेरी जान हिन्दुस्तान की आजादी के लिये है। अगर पांच सौ ही लेना है तो मुझे गिरफ्तार

करवाकर ले लो लेकिन सारा मुल्क तुम पर थूकेगा, तुम्हें अंग्रेज की कुतिया कहेगा। तुम क्या हिन्दुस्तानी नहीं हो ? हम लोगों को अपने लिये कुछ नहीं चाहिये। हम लोग आज नहीं तो कल या तो अंग्रेज और उसकी पुलिस की गोली से मारे जायेंगे या पकड़े जाने पर फांसी चढ़ा दिये जायेंगे। हमारी शहादत का फायदा मुल्क और कौम को, तुम्हारे जैसे लोगों को होगा। हम लोग मुल्क से गैर कौम की गुलामी हटाकर अपने लोगों का राज कायम करने के लिये लड़ रहे हैं ताकि सब लोगों को ईमान और इज्जत से रोजी कमाने और जिन्दा रहने का मौका हो। तुमने भगतसिंह का नाम सुना होगा ! उन्होंने अंग्रेजों के जुल्म के खिलाफ, दिल्ली के लाट की कौंसिल में बम चलाया था। उन्हें अंग्रेजों ने फांसी पर चढ़ा दिया तो सारे मुल्क में मातम की हड़ताल हुई थी। हम लोग उन्हीं के साथी हैं।"

"वाह !" मुनीर हाथ में आती अच्छी रकम निकल जाने की खिन्नता में पलंग पर पांव लटका कर बैठ गई और मुंह विचकाकर बोली—"काले आदमी से तो अंग्रेज ज्यादा इन्साफ करता है। अंग्रेज का डर न हो तो काले आदमी एक दूसरे को खा जायें !"

निरंजन धीमे स्वर में बात करने के लिये औरत की ओर बढ़ गया और समझाने लगा—"अंग्रेज की नौकरी और गुलामी में काला आदमी बेइन्साफी और जुल्म इसलिये करता है कि अंग्रेज काले आदमी को जुल्म कराने के लिये ही नौकर रखता है। यह काले आदमी की गरीबी और बेबसी ही है जो उसे अंग्रेज की गुलामी में जुल्म करने के लिये मजबूर करती है। देखो बहिन, बुरा न मानना, तुम मजबूर न होती, तुम्हें दूसरे बाइज्जत तरीके से गुजारे का मौका मिलता तो तुम कभी बाजार में न बैठती। सारे मुल्क और कौम की यही हालत है। लोग गैर कौम की गुलामी में बेईमानी करके, बेइज्जती के टुकड़ों पर गुजारा करने के लिये मजबूर हैं, नहीं तो हमारे मुल्क में किस बात की कमी है ! अंग्रेज भर पेट खाने के लिये पाता है इसलिये इन्साफ करने का गरूर भी कर सकता है।"

मुनीर चुपचाप सोचने लगी।

निरंजन फिर बोला—"अंग्रेज में दम ही कितना है ! वह हमारे मुल्क पर इसी मुल्क के लोगों से अपनी हुकूमत चलवा रहा है। अंग्रेज के मुल्क की आबादी ही कितनी है ? वह तो चालबाजी और धूर्तता से हम पर राज कर रहा है।

हमारा ही नादान भाई अंग्रेज की तरफ से हम पर बन्दूक चलाता है। मुल्क मे हजार आदमी पीछे एक-एक आदमी भी हम लोगो की तरह हथेली पर सिर लेकर निकल आये तो अंग्रेज यहा एक दिन नही टिक सकता। अब हमारा वक्त आ गया है। तुम्हे मालूम नही, हजारो हिन्दुस्तानी सिपाहियो ने बगावत कर दी है और नेता जी ने आजाद हिन्द फौज बना कर आसाम मे अंग्रेजो पर हमला कर दिया है। देखो, यह कितना बडा जग चल रहा है! अंग्रेज अपने मुल्क पर हिटलर का राज बर्दाश्त करने के लिये तैयार नही लेकिन हम अपने मुल्क में आजादी मागते हैं तो हमे गद्दार कह कर हम पर गोली चलाता है, हमें फांसी पर लटका देता है। तुम से क्या परदा, तुमने मेरी जान बचाई है, अगर मैं इस वक्त पकडा जाता तो तुम कल भी अखबार मे देखती। अखबारो में रोज ही अंग्रेजो से हमारी लडाई की बातें छपती हैं लेकिन इस में हमारा अपना क्या फायदा ? हम जमीन-जायदाद और नौकरी नही चाहते है। हम तो चाहते हैं, हमारा मुल्क और कौम बरबादी मे बचे।"

"अरे वो क्या, भला सा नाम है साहबजादे! हा; तुम कांग्रेस वाले हो क्या ?" मुनीर ने ठोड़ी पर उंगली रख कर माथे पर चिन्ता की रेखा डालकर अनुमान प्रकट किया, "कांग्रेस वाले भी तो अंग्रेजों के खिलाफ जुलूस निकालते है। पुलिस उन्हें भी डण्डे मार कर जेल मे ले जाती है। वे भी तो आजादी चाहते हैं। वे भी तो कहते हैं, अंग्रेज को हटा कर आम जनता का राज कायम करेंगे। नहीं क्या ?"

"ठीक तो है, तुम तो समझती हो।" निरंजन ने सान्त्वना से कहा, "कांग्रेस वाले बेचारे मुंह से स्वराज की बात करते हैं और अंग्रेज उन्हें अपनी नौकर पुलिस से पिटवा कर जेलों मे बन्द कर देता है। तुम तो जानती हो, कांग्रेस वाले कोई चोरी डकैती मार-पीट नहीं करते। अपने मुल्क मे अपना राज मांगते हैं। हम कांग्रेस वालो से बढ़ कर हैं। अंग्रेज हमारे मुल्क के निहत्थे लोगों की जायज माग पर गोली चलाते हैं तो हम अंग्रेज की गोली का जवाब बम से देते हैं, समझीं··!" निरंजन कोशिश कर रहा था कि राजनैतिक बातो से अनजान वेश्या को देश की स्वतन्त्रता के लिये क्रान्ति की बात समझा कर उसकी सहानुभूति पा ले।

"हां साहबजादे!" एक गहरी सांस लेकर मुनीर ने पूछा, "प्यास लगी होगी! कुछ पानी-वानी नहीं पियोगे ?"

निरंजन ने एक गिलास पानी मांगा। मुनीर ने कमरे के कोने से सुराही और शीशे का गिलास उठाकर निरंजन को पानी पिलाया।

मुनीर सोफा पर बैठ पान लगाने लगी और जम्हाई दबा कर बोली—"इस वक्त घर से निकलोगे तो राह में जरूर पकड़ लिये जाओगे। तुम पलंग पर सो जाओ। हम सोफा पर लेट रहेंगी या यहीं फर्श पर कुछ विछा लेंगी।" उसने पान का बीड़ा निरंजन की ओर बढ़ा दिया।

निरंजन मुनीर की उदारता से कुछ झेंप गया—"नहीं, आप अपने पलंग पर लेटिये, मुझे नींद नहीं मालूम हो रही है। मैं सोफा पर बैठा रहूंगा।" उसने कहा।

"यह कैसे हो सकता है साहबजादे, तुम तो ताजीम के काबिल मेहमान हो!" मुनीर ने गम्भीरता से उत्तर दिया और पलंग के सिरहाने की आलमारी खोल कर एक हल्की सी दरी और तकिया निकाल लिया। निरंजन के विरोध करते रहने पर भी मुनीर दरी को फर्श पर विछा कर लेट गई।

निरंजन पलंगपोश हटाये विना ही पलंग पर लेट गया। नींद का कोसों पता न था। वह सोच रहा था, सुबह दिन निकले इस मकान से निकलेगा तो देखने वाले क्या कहेंगे? मन को सान्त्वना दी—लोग देखेंगे भी तो जान पहचान के थोड़े ही होंगे? दूसरा ख्याल आया, इस पलंग पर जाने कितने और कैसे-कैसे लोग लेटे होंगे? घृणा मालूम हुई परन्तु अब घृणा मुनीर के प्रति नहीं, उसके दुर्भाग्य के प्रति थी। उसने करवट ले ली।

"साहबजादे, नींद नहीं आ रही?" अलसाई हुई आवाज में मुनीर ने पूछा।

"अभी तो नहीं, कहिये?"

"अंग्रेज की हुकूमत नहीं रहेगी तो क्या सब खुशहाल हो जायंगे, बेवस को गुजर-वसर के लिये इज्जत की रोजी का मौका हो जायगा?" उसने पूछा और स्वयं ही निराशा प्रकट की, "यह कैसे हो सकता है? गरीब तो हमेशा गरीब, खस्ता हाल ही रहेगा। जो बेबस है, वह क्या कर सकता है?"

निरंजन करवट से मुनीर की ओर झुक कर धीमे स्वर में समझाने लगा—"स्वराज से हमारा मतलब ही यह है कि पूरी रियाया, मर्द और औरत सभी को बाइज्जत तरीके से मेहनत करके रोजी कमाने का मौका हो! अंग्रेज ऐसा मौका नहीं देता क्योंकि उसकी हुकूमत ही गरीब की लूट पर कायम है। अमीरों को उसने अपने साथ मिला लिया है। रियाया भूख से मजबूर न हो

तो गैर कौम के हाथ अपनी आजादी और ईमान क्यो बेचे ? जब मुल्क मे गरीब को दबाने का तरीका चालू है तो उसमें मर्द-औरत सब पिसते हैं।" निरंजन मुनीर को स्वतंत्रता का महत्व समझाता रहा। मुनीर कुछ देर हुकारा भरती रही। फिर नीद मालूम होने पर बोली, "अब सो जाओ साहबजादे, अल्लाह सलामत रखे !" उसने करवट ले ली।

सुबह ग्यारह-बारह बजे बाजार भर गया तभी मुनीर ने निरंजन को अपने घर से जाने की सलाह दी और कलेवा किये बिना न जाने दिया।

× × ×

१९४८ के आखिरी दिन थे। निरजन के मुनीर के यहा शरण पाने की घटना को छः बरस बीत चुके थे। मुनीर के यहां पुलिस के हाथ से बच कर भी आखिर निरंजन गिरफ्तार हो गया था। सन १९४७ मे कांग्रेसी राज का स्वराज हुआ तो सभी राजनैतिक बन्दियों के साथ निरजन भी जेल से छूट गया परन्तु कांग्रेसी राज्य मे निरंजन और उसके जैसे लोगों के स्वप्न पूरे नही हुये। वे लोग नये शासन मे फिर से संगठित होकर व्यवस्था के विरुद्ध सार्वजनिक रूप से असंतोष प्रकट कर, सुधार और परिवर्तन की मांग करने लगे। कोई भी सरकार अपने प्रति असतोष का प्रचार और अपनी व्यवस्था पलट देने के प्रयत्नो को नहीं सह सकती। निरजन जैसे लोगों को फिर खोज-खोज कर जेलो में भरा जाने लगा। पुलिस पहले अंग्रेज सरकार के हुक्म से लोगों को पकड़ती थी, अब कांग्रेस सरकार के हुक्म से पकड कर जेलो मे डालने लगी।

निरंजन के दल के लोगों ने अपना आन्दोलन जनता मे फैलाने के लिये लखनऊ में एक सम्मेलन करने की तैयारी की थी। सरकार ने उस पर कोई रोक-थाम न लगाई। सम्मेलन के अवसर पर सब बागी लोगों के खिलाफ सामूहिक रूप से गिरफ्तारी के वारंट जारी कर दिये गये। पुलिस ने उनके ठहरने के स्थानो पर एक साथ छापे मारकर सभी लोगों को एक ही हल्ले में समेट लेना चाहा।

अवसरवश निरंजन इस छापे से गिरफ्तार हो जाने से बच गया। जिस समय पुलिस ने उसके डेरे पर छापा मारा, वह कहीं बाहर गया हुआ था। उसे पुलिस के छापे का समाचार मिल गया और वह डेरे पर न लौटा परन्तु पुलिस से बचे रहना सहल न था। उसकी जानी-पहचानी सभी जगहों पर

निरंजन ने एक गिलास पानी मांगा। मुनीर ने कमरे के कोने से सुराही और शीशे का गिलास उठा कर निरंजन को पानी पिलाया।

मुनीर सोफा पर बैठ पान लगाने लगी और जम्हाई दबा कर बोली—"इस वक्त घर से निकलोगे तो राह में जरूर पकड़ लिये जाओगे। तुम पलंग पर सो जाओ। हम सोफा पर लेट रहेंगी या यहीं फर्श पर कुछ बिछा लेंगी।" उसने पान का बीड़ा निरंजन की ओर बढ़ा दिया।

निरंजन मुनीर की उदारता से कुछ झेंप गया—"नहीं, आप अपने पलंग पर लेटिये, मुझे नींद नहीं मालूम हो रही है। मैं सोफा पर बैठा रहूंगा।" उसने कहा।

"यह कैसे हो सकता है साहबजादे, तुम तो ताजीम के काबिल मेहमान हो!" मुनीर ने गम्भीरता से उत्तर दिया और पलंग के सिरहाने की आलमारी खोल कर एक हलकी सी दरी और तकिया निकाल लिया। निरंजन के विरोध करते रहने पर भी मुनीर दरी को फर्श पर बिछा कर लेट गई।

निरंजन पलंगपोश हटाये बिना ही पलंग पर लेट गया। नींद का कोसों पता न था। वह सोच रहा था, सुबह दिन निकले इस मकान से निकलेगा तो देखने वाले क्या कहेंगे? मन को सान्त्वना दी—लोग देखेंगे भी तो जान पहचान के थोड़े ही होंगे? दूसरा ख्याल आया, इस पलंग पर जाने कितने और कैसे-कैसे लोग लेटे होंगे? घृणा मालूम हुई परन्तु अब घृणा मुनीर के प्रति नहीं, उसके दुर्भाग्य के प्रति थी। उसने करवट ले ली।

"साहबजादे, नींद नहीं आ रही?" अलसाई हुई आवाज में मुनीर ने पूछा।

"अभी तो नहीं, कहिये?"

"अंग्रेज की हुकूमत नहीं रहेगी तो क्या सब खुशहाल हो जायंगे, बेबस को गुजर-बसर के लिये इज्जत की रोजी का मौका हो जायगा?" उसने पूछा और स्वयं ही निराशा प्रकट की, "यह कैसे हो सकता है? गरीब तो हमेशा गरीब, खस्ता हाल ही रहेगा। जो बेबस है, वह क्या कर सकता है?"

निरंजन करवट से मुनीर की ओर झुक कर धीमे स्वर में समझाने लगा—

"... से हमारा मतलब ही यह है कि पूरी रियाया, मर्द और औरत सभी ...त तरीके से मेहनत करके रोजी कमाने का मौका हो! अंग्रेज ... नहीं देता क्योंकि उसकी हुकूमत ही गरीब की लूट पर कायम है। ... को उसने अपने साथ मिला लिया है। रियाया भूख से मजबूर न हो

तो गैर कौम के हाथ अपनी आजादी और ईमान क्यों बेचे ? जब मुल्क में गरीब को दबाने का तरीका चालू है तो उसमें मर्द-औरत सब पिसते हैं।" निरंजन मुनीर को स्वतंत्रता का महत्व समझाता रहा। मुनीर कुछ देर हुंकारा भरती रही। फिर नींद मालूम होने पर बोली, "अब सो जाओ साहबजादे, अल्लाह सलामत रखे !" उसने करवट ले ली।

सुबह ग्यारह-बारह बजे बाजार भर गया तभी मुनीर ने निरंजन को अपने घर से जाने की सलाह दी और कलेवा किये बिना न जाने दिया।

× × ×

१९४८ के आखिरी दिन थे। निरंजन के मुनीर के यहां शरण पाने की घटना को छः बरस बीत चुके थे। मुनीर के यहां पुलिस के हाथ से बच कर भी आखिर निरंजन गिरफ्तार हो गया था। सन १९४७ में कांग्रेसी राज का स्वराज हुआ तो सभी राजनैतिक बन्दियों के साथ निरंजन भी जेल से छूट गया परन्तु कांग्रेसी राज्य में निरंजन और उसके जैसे लोगों के स्वप्न पूरे नहीं हुये। वे लोग नये शासन में फिर से संगठित होकर व्यवस्था के विरुद्ध सार्वजनिक रूप से असंतोष प्रकट कर, सुधार और परिवर्तन की मांग करने लगे। कोई भी सरकार अपने प्रति असंतोष का प्रचार और अपनी व्यवस्था पलट देने के प्रयत्नों को नहीं सह सकती। निरंजन जैसे लोगों को फिर खोज-खोज कर जेलों में भरा जाने लगा। पुलिस पहले अंग्रेज सरकार के हुक्म से लोगों को पकड़ती थी, अब कांग्रेस सरकार के हुक्म से पकड़ कर जेलों में डालने लगी।

निरंजन के दल के लोगों ने अपना आन्दोलन जनता में फैलाने के लिये लखनऊ में एक सम्मेलन करने की तैयारी की थी। सरकार ने उस पर कोई रोक-थाम न लगाई। सम्मेलन के अवसर पर सब बागी लोगों के खिलाफ सामूहिक रूप से गिरफ्तारी के वारंट जारी कर दिये गये। पुलिस ने उनके रहने के स्थानों पर एक साथ छापे मारकर सभी लोगों को एक ही हल्ले में समेट लेना चाहा।

अवसरवश निरंजन इस छापे में गिरफ्तार हो जाने से बच गया। जिस समय पुलिस ने उसके डेरे पर छापा मारा, वह कहीं बाहर गया हुआ था। उसे पुलिस के छापे का समाचार मिल गया और वह डेरे पर न लौटा परन्तु पुलिस से बचे रहना सहल न था। उसकी जानी-पहचानी सभी जगहों पर

उसकी खोज हो रही थी। निरंजन घनी भीड़ में और रात पड़े अंधेरी गलियों में घूमता रहा। रात बढ़ने के साथ भीड़ छंटने लगी। अंधेरी गलियों में घूमते रहना भी सन्देहजनक था। निरंजन को याद आई लखनऊ में छः वर्ष पहले की आशंकापूर्ण रात और मुनीर के यहां आश्रय पाने की बात। फिर वैसी ही लाचारी थी।

निरंजन चौक के बाजार में पहुंचा। गली पहचानी और जीना पहचाना। साढ़े दस का समय होगा। जीने के किवाड़ खुले थे। रोशनी के लिये ऊपर लालटेन जल रही थी। पिछले छः वर्ष में अनुभव के साथ निरंजन का साहस भी बढ़ चुका था फिर भी कुछ झिझक हुई पर वह जीना चढ़ गया। मुनीर सोफा के समीप बैठी सोफा पर पानदान रखे पान लगा रही थी। आहट पा कर उसने घूम कर देखा और अभ्यस्त मुस्कराहट से अभ्यागत का स्वागत किया—"आदाबअर्ज करती हूं, तशरीफ लाइये !" और निरंजन को सोफा पर बैठने का संकेत किया।

निरंजन ने आदाबअर्ज से उत्तर दिया और सोफा पर बैठ कर पूछा—"आपने पहचाना ?"

"तशरीफ रखिये जनाब !" मुनीर ने मुस्कराकर उत्तर दिया, "आप जैसे करमफरमा को बांदी नहीं पहचानेगी ? वल्लाह, क्या फरमाते हैं आप !"

निरंजन मुनीर की ओर देखता रहा। सोफा और मुनीर के चेहरे पर भी छः वर्ष का काफी प्रभाव दिखाई दे रहा था—"नहीं, अभी आपने पहचाना नहीं।...कोशिश कीजिये !" निरंजन ने फिर आग्रह किया।

गाल में दबे पान की पीक निगल कर मुनीर ने ध्यान से आगन्तुक को देखा और मस्तिष्क पर जोर दिया। उसके होंठ खुले रह गये—"ओह ! अब पहचाना। वाकई साहबजादे, मुद्दतों में दिखाई दिये। जमाना बदल गया। अब तो आप लोगों का राज है। आप लोगों की सरकार है। हम गरीब-गुरबा तो जैसे तब थे, वैसे अब। जंग की तंगी के जमाने में भी रुपये का चार सेर आटा खाते रहे। अब सवा दो सेर का खाते हैं। अल्लाह सलामत रखे, कनीज को याद तो किया ! कैसे आये ?"

"वैसे ही, जैसे तब आया था !" निरंजन ने स्वर धीमा कर उत्तर दिया।

"यानि" ठोड़ी पर उँगली रख कर मुनीर ने पूछा, "क्या कह रहे हो ?... तब तो पुलिस से भाग कर आये थे !"

"आज भी वैसे ही आया हूं।"

"अल्लाह की रहमत, क्या कह रहे हो ? अंग्रेज तो गये। अब तो अपने काले आदमियों का राज है। तुम और क्या चाहते हो ?" मुनीर विस्मित थी।

"काले आदमियों का राज क्या है, काले दिलों का राज है बहिन ! अंग्रेज तो चले गये पर हुआ कुछ भी नही। स्वराज होता तो तुम यहां इसी तरह बैठी होती ?" निरंजन ने पूछा।

"तो अब तुम और क्या चाहते हो ?"

"हम चाहते हैं सब लोगों के लिये बाइज्जत रोजी कमाने के लिये बराबर मौका। सब लोग मेहनत करने का मौका पायें और अपनी इज्जत की कमाई खायें। पेट भरने के लिये किसी को अपना ईमान और जिस्म बेचना न पड़े। मेहनत करने वालों का पंचायती राज हो।" निरंजन ने आग्रह के स्वर मे मांग की।

"हाय तो इसमें बुरा क्या है ?" मुनीर ने विस्मय प्रकट किया, "अब तो अपने लोगों की सरकार है। ऐसा तो होना ही चाहिये। ऐसी बातो से सरकार को क्या एतराज ? यह सरकार तो उन नासपीटे कम्युनिस्टों को जेल मे डालती है जो मुए रेलें गिरा कर लोगो की जान लेते हैं और कहते हैं, सब को लूट लो !"

"नही नही" सिर हिला कर निरंजन ने विरोध किया, "कम्युनिस्ट ऐसा नहीं कहते। वे तो वही कहते हैं जो मैं कह रहा हूं। तभी कांग्रेसी पुलिस मुझे गिरफ्तार करना चाहती है।"

"हाय अल्ला सच ?" मुनीर हैरान थी, "साहबजादे, तुम तो इसी सुराज के लिये जान दे रहे थे ....!"

सशस्त्र क्राति के प्रयत्नों की कथा

सिंहावलोकन

जान हथेली पर लिये ब्रिटिश साम्राज्य-शाही से लड़ने वालो का जीवन कितना रोमाचकारी रहा होगा, अपने आदर्शों के लिये उन लोगो ने क्या-क्या सहन किया, वह सब कहानी रोचक उपन्यास से भी अधिक रोमाचक है। इन सस्मरणो मे पजाब केसरी लाला लाजपतराय की हत्या का बदला लेने, देहली असेम्बली बम-काण्ड, वायसराय की ट्रेन को बम से उड़ाने, राजनैतिक बन्दियों को छुड़ाने के लिये जेल पर आक्रमण की तैयारी, क्रांतिकारियो और पुलिस मे आमने-सामने लड़ाई की घटनाओ का ब्योरेवार वर्णन यशपाल ने तीन भागो में किया है। पत्र-पत्रिकाओं ने इस पुस्तक की जितनी प्रशंसा की है, उस की संक्षिप्त चर्चा के लिये भी यहा स्थान नहीं।

प्रकाशक